एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

मनु—अ० २, श्लो० २०

लेखक :

श्रीयुक्त डा० कालिदास नाग

एम० ए०, पी० एच० डी० (पेरिस)

हिन्दू पुस्तकालय रत्नमाला—१ रत्न

बृहत्तर भारत

(सचित्र)

अर्थात्

जावा, कम्बोज आदि उपनिवेशोंमें हिन्दू और बौद्ध संस्कृतिका दिग्दर्शन।

लेखक

श्रीयुक्त डा० कालिदास नाग एम. ए. पी. एच. डी. (पेरिस)

प्रकाशक :

विनायक लाल खन्ना,

हिन्दू पुस्तकालय,

१२, शिवठाकुर गली,

कलकत्ता।

प्रथम संस्करण मूल्य ।।।

प्राप्तिस्थान :---

[१]

हिन्दू पुस्तकालय।

१२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता।

[२]

कलकत्ता पुस्तक भण्डार।

१७१-ए, हैरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रस्तावना।

—:❀:—

संसारके साहित्यमें इतिहासका स्थान सबसे ऊंचा है। किसी जाति अथवा राष्ट्रको जीवित रखने तथा उसके उत्थान और पतनमें इतिहास बड़ी अपूर्व्व सहायता देता है। जिस देश का सुविस्तृत इतिहास नहीं वह देश नष्ट प्राय ही समझना चाहिये बड़े बड़े महापुरुष बड़ी सभ्यता तथा बड़े राष्ट्र जो लय हो गए हैं उनको चिर स्मरणीय रखना इतिहासका ही कार्य्य हैं। इतिहास हीमें एक ऐसी शक्ति है जिससे कोई जाति अथवा रास्ट्र अतीतके आधार पर अपना भविष्य निर्माण कर सकती है। इतिहास ही से पता चलता है कि किन किन बातोंकी देश और जातिके उत्थान में आवश्यकता और किन किन भेदभाव तथा दोषोंके कारण किसी जातिविशेष अथवा राष्ट्रका पतन होता है। किसी विद्वान का कहना है कि यदि किसो देश अथवा राष्ट्रको अवनत रखना है तो उसके इतिहासको नष्ट कर दो। इस कथनमें बहुत कुछ सत्यता है और अपने भारतवर्षके लिये तो यह पूर्णतया सत्य जचती है।

भारतवर्षका क्रमबद्ध तथा तथ्यघटनाओंका सुविस्तृत इतिहास नहीं के बराबर है और हिन्दीमें तो है ही नहीं ऐसा कहनेमें अत्युक्ति न होगी। किन्तु हर्षकी बात है कि थोड़े दिनोंसे इस ओर पूजनीय विद्वानोंका ध्यान खिंचा है और अब आशा होती है कि शीघ्र ही उस अभावकी पूर्ति हो जायगी। भारतवर्षके

सुवृहत इतिहास लिखनेमें बड़ी कठिनाइयां भी हैं। सबसे अधिक कठिनायी तो यह है कि एक इतने विशाल तथा प्राचीन सभ्यता और संस्कृति वाले देशके इतिहासके लिये बड़ी सामग्रीकी आवश्यकता है, जिसमें बहुत सी सामग्री उपलब्ध नहीं है और प्रतिदिन नयी खोज हो रही है जिससे कि भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी सीमा सुदूर प्राचीन समय तक चली जा रही है, जैसा कि अभी हालके हरप्पा (पंजाब) और महंजोदड़ो (लरकाना सिन्ध) के नवाविष्कृत भग्नावशेषसे पता चलता है। भारतवर्ष ऐसे विशाल देशके इतिहासके लिये एक बड़ी संस्थाकी आवश्यकता है और बिना राज्याश्रयके यह कार्य्य दुष्कर भी है। इस लिये यही उचित है कि उसके एक एक अंश पर छोटी २ ऐतिहासिक पुस्तकें प्रकाशित की जांय जिससे कि भविष्यमें एक सुविस्तीर्ण और क्रमबद्ध वृहत इतिहास लिखनेका साधन सुगम हो जाय। प्रत्युत उसी आशासे प्रेरित हो आज हम भारतवर्षके एक अप्रकाशित महत्वपूर्ण अंशका सामान्य परिचय करानेके लिये पाठकोंके सामने यह छोटीसी पुस्तक उपस्थित करते है, जिसकी त्रुटि पर ध्यान न देते हुए यदि सहृदय सज्जनोंने इसे अपनाया तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

यह पुस्तक डा० कालिदास नाग महोदयकी अङ्गरेजी पुस्तक 'ग्रेटर इन्डिया' (Greater India) के आधारपर अनुवाद की गई है। उक्त डा० नाग महोदय भारतगौरव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ विदेश भ्रमण करने गये थे और

लौटते समय प्राच्य खण्ड (Far East) अर्थात् जावा, कम्बोज, श्याम, सुमात्रा, चीन और जापान इत्यादि प्रदेशोंमें होते हुए भारत आये और वहांसे हिन्दू तथा बौद्ध संस्कृति सभ्यता तथा साहित्यके क्रम विकाशका इतिहास और चित्र अपने साथ लेते आये हैं। काम्बोज चम्पा और जावाके विशाल हिन्दू और बौद्ध मन्दिरों की चित्रावली जो उन्होंने छाया चित्रमें दिखानेके लिये प्रस्तुत कराई है वह अत्यन्त मनोहर और अनुपम है। उन्होंने उक्त उपनिवेशोंमें भारतीय सभ्यता संस्कृति पर अङ्गरेजी भाषामें एक लेख बृहत्तर भारतके नामसे ल्यूगैनोकी (Switzerland) शान्ति सभा (Peace Conference) के अधिवेशनमें पढ़ा था, जिसमें वर्त्तमान योरोपके बड़े बड़े विद्वान उपस्थित थे। रोममें इसका फ्रेंच अनुवाद प्रकाशित हुआ था जिसको वहांके लोगोंने बहुत पसन्द किया था। आज वही हिन्दी भाषामें पाठकोंके सामने उपस्थित करनेमें हमको आनन्द होता है और आशा है कि लोगोंको वह रोचक होगा। प्राच्य खण्डके उन उपनिवेशोंमें नित नये आविष्कार हो रहे हैं। डच और फरासिसी विद्वानोंको इस खोजका श्रेय है और हम लोगोंको उनके कृतज्ञ रहना चाहिये। फरासीसी विद्वानोंकी ओरसे हनाय (Hanoi) में एक संस्था कम्बोज, चम्पा, आदि प्रदेशोंमें हिन्दू संस्कृति और सभ्यताके अनुसन्धानके लिये स्थापित हुई है और दूसरी संस्था डच विद्वानोंने बटेभियामें (Batavia) स्थापित की है जिसने जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, आदि प्रदेशोंके हिन्दू और

बौद्ध मन्दिर तथा संस्कृति पर बहुत बड़ा प्रकाश डाला है। उन्न दोनों संस्थाओंने पुस्तकें प्रकाशित कर यह सिद्ध कर दिया है कि भारतवासी आजकी तरह कूप मण्डूक न थे वरन् अपनी धार्मिक शिक्षा तथा संस्कृतिका विस्तार वर्तमान भारतकी सीमा के बाहर भी करते थे। उनका सनातन धर्म्म ? यवद्वीप (जावा) में जाकर प्रम्बानम या पानातरम अथवा कम्बोजमें अंकुरथोम या अंकुरभाट इत्यादि के विशाल हिन्दू शैव और वैष्णव मन्दिर स्थापित करानेसे डूब न गया था। पर खेद है कि हिन्दी भाषियों-के लिये वे सब बहुमूल्य रत्न अन्धकारके गर्भमें ही पड़े हैं।

पर हर्ष है कि अभी हालमें एक नवीन संस्था "बृहत्तर भारत परिषद्" के नामसे यहां स्थापित हुई है जिसका उद्देश्य उन सब विद्वानोंके लेख तथा स्वयं यहांसे विद्वानोंको भेजकर इस भारत-वर्षके अप्रकाशित महत्वपूर्ण अंश पर प्रकाश डालना है। परन्तु यह कार्य विना लोगोंकी सहानुभूति और धनके नहीं हो सकता, क्योंकि कार्य बहुत बड़ा है जैसा कि इस पुस्तकके अवलोकनसे विदित हो जायगा कि यदि एक ही प्रदेश (जैसे जावा) ले लिया जाय तो उसी पर बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। अस्तु, सहृदय पाठकोंसे प्रार्थना है कि उक्त संस्थाकी सहायता करें।

यहां पर दो चार शब्द अब हम अपने विषयमें कह कर इसको समाप्त करते हैं। जबसे यह पुस्तकालय स्थापित हुआ है उसी समयसे एक सुविस्तीर्ण भारतवर्षका इतिहास प्रकाशित करनेकी इच्छा थी पर कई कारणोंसे वह आशा अभी पूरी होती

नहीं दीखती, इसलिये यही अच्छा समझे कि जिनके पाद पद्ममें बैठकर इतिहाससे प्रेम हुआ उनकी इस अपूर्व पुस्तकको हिन्दी पाठकोंके सामने रखें जिससे उस इच्छाके एक अंशकी पूर्ति हो, इसलिये आज बड़े हर्षके साथ इस बृहत्तर भारतको आप लोगोंके सामने उपस्थित करते हैं यदि लोगोंने इसको अपनाया तो भविष्यमें और अंशों पर प्रकाश डालनेका प्रयास करेंगे।

इस पुस्तकमें शीघ्रताके कारण बहुत कुछ त्रुटि रह गई है जिसे सहृदय पाठक क्षमा करेंगे। पुस्तकमें विशिष्ट तथा कठिन शब्दोंके आगे १, २, ३, से लेकर १०१ तक अंक दिये हुए हैं, जिसका विवरण परिशिष्टमें दिया हुआ है, जैसे हेरोडोटस १ इत्यादि। अन्तमें हम अपने श्रद्धेय गुरू श्रीयुक्त कालिदास नाग महोदयके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हैं, जिन्होंने मुझे इसके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करानेकी आज्ञा दी और जो चित्र इसमें लगे हैं वह भी उन्हींकी कृपा है। और यहां पर हम अपने परम मित्र श्रीयुत पद्मराजजी जैन तथा पण्डित दीना-नाथजी मिश्र एम० ए० बी० एल० को सादर धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते क्योंकि उनकी अमूल्य सहायताके विना यह सम्भवतः प्रकाशित ही नहीं होती।

नोट—इस पुस्तकके पांच फर्मे स्थानीय "माहेश्वरी प्रेस" में छपे हैं। और ५।६ बार प्रूफ देखने पर भी इनमें बहुत अधिक अशुद्धियां रह गयीं, यह प्रेसके भूतोंकी कृपा है जिसके

लिये पाठक मुझे क्षमा करेंगे। आगामी संस्करणमें ये भूलें सुधार दी जायगीं। एक शुद्धि-पत्र भी लगा दिया गया है, पाठक सुधार कर पढ़ें।

प्रकाशक—

श्रीकालि कुमारिका क्षेत्र
(कलकत्ता)
चैत्र शुदि १३ गुरुवार सं० १९८४

विनायकलाल खन्ना
हिन्दू-पुस्तकालय

विषय सूची।

प्रथम प्रकरण

द्वितीय प्रकरण

तृतीय प्रकरण।

विषय प्रवेश।

-

भारतके पश्चिम प्रान्तमें सिन्धु नदीके किनारे और बटवृक्ष सुशोभित वन बीथिकाओंमें बैठ कर हिन्दू महर्षियोंने ऋक् मन्त्रों द्वारा भारतवर्ष को निनादित किया था, आज उस भारतके गौरवमय समयको कई शताब्दियां बीत गईं, सृष्टिमें कितने ही नवीन परिवर्त्तन होगये, कितनी ही ध्वंस लीलाओंने भारतके इस हृदय पर अपने पद चिन्ह अंकित किये, कितने ही विशाल साम्राज्य और राजवन्शोंका उत्थान और पतन कितने ही इतिहासोंका जागरण और लय इस तपोवृद्ध भारतने देखा! परन्तु इन शतसहस्र वर्षोंसे इस अतीतको किसीने अनागत भविष्यके लिये लिखकर नहीं रखा। इतनी बड़ी एक विशाल जाति और देशका सुनिर्दिष्ट जातीय इतिहास गिरिकन्दराओंके निविड़ अन्धकारमें ही छिपा रह गया। अन्य देशोंकी भांति इस भारतवर्षमें धर्म्म, समाज और राष्ट्रका प्रत्येक स्तम्भ क्रम क्रमसे ही निर्माण हुआ था। परन्तु यूनानने जैसे हिरोडोटस

थ्यूकिडिडिस२ ओर रोमने जैसे टसिटस३ और पोलिबियस४ के जीवित उदाहरण सामने रखे वैसे भारतवर्षने एक भी नहीं रखा। परन्तु प्राचीन कालसे भारतवर्षने इतिहास और पुराणोंका मूल्य अच्छी प्रकार समझा था। इसके अनेक प्रमाण ब्राह्मण, उपनिषद् और सूत्र साहित्यमें पाये जाते हैं तौभी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि मुसलमान इतिहास लेखकोंके पहले भारतीय साहित्यमें भारतकी केवल धर्म्म और नीतिकी उच्च भावनाओंके अतिरिक्त इतिहासके शृंखलाबद्ध ग्रन्थ कुछ भी नहीं पाये जाते। पाश्चात्य विद्वान हिन्दू जातिकी इस ऐतिहासिक उदासीनताको केवल आश्चर्य्य ही नहीं वरन हिन्दुओंकी प्राचीन सभ्यता संस्कृति और विद्या बुद्धि पर एक कालिमा समझते हैं। भारतवासियोंका ध्यान विशेष रूपसे इतिहासकी ओर आकर्षित न होनेके और भी कई कारण हैं, जिसमें राष्ट्रीय एकताका अभाव जातीय ऐक्यका न होना, भारतीयोंकी दैव-निर्भरता, पारलौकिक विषयोंमें अत्यासक्ति और आलस्य मुख्य हैं। इन्हीं सब कारणोंसे जो कुछ ऐतिहासिक नींव पूर्वजोंने डाली थी वह टिक न सकी और देशका अधःपतन इन्हीं सब कुसंस्कारोंका परिणाम समझा गया। हर्षकी बात है कि भारत हितेच्छु अब इतिहासका उद्धार जातीय भित्ति पर कर उस प्राचीन कलंकको मिटानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

भारतके क्रमबद्ध इतिहासके अभावको स्वीकार करते हुए, हम,भारतीय कवियों पर जो इतिहासकी अनभिज्ञताका दोषारोपण

किया जाता है उसे स्वीकार करनेको तैयार नहीं। इसे कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता कि जिन भारतीय कवियोंने आजसे पांच हजार वर्ष पहले वैदिक ऋचाओंकी रचनाकी उनमें इतिहास रचना शक्तिका अभाव था। जो जाति आजसे पचीस सौ वर्ष पहले पाणिनि जैसे ग्रन्थोंकी रचना कर सकती हो, जो जाति सहस्त्रों वर्ष तक अपने धार्म्मिक, सामाजिक और मानसिक जीवनकी घटनाओंको पुस्तकों द्वारा नहीं वरन स्मरण शक्ति द्वारा आज पर्य्यन्त संसारमें उपस्थित कर रही हो; कौन कह सकता है कि उस जातिमें इतिहास रचना की योग्यता नहीं थी या शक्तिका अभाव था। इतना होने पर भी अभीतक यह समस्या हल नहीं हो सकी है कि इस देशका जातीय इतिहास क्यों नहीं लिखा गया (दे० डा० नाग रचित "ह्यूमैनिजेशन आफ हिस्टरी" माडर्न रिव्यू फरवरी १९२३)।

सम्भव है कि हिन्दू महर्षियोंने केवल विग्रह और सन्धि, जय और पराजयके वर्णनको ही जातीय इतिहासका यथार्थ रूप न समझा हो और ऐसे इतिहासके प्रणयनमें अपनी शक्तिका दुरुपयोग समझा हो। बड़े साहसके साथ उन्होंने इन सांसारिक घटनाओंको केवल जगतकी माया और असत्य प्रमाणित किया और इस सांसारिक मायाके परे सत्य, स्थिर और सच्चिदानन्द रूप एक ऐसे जगतके इतिहासके अन्वेषणमें अपना समय लगाया कि आज भी सैद्धान्तिक जगत हिन्दू कवियोंका लोहा मान रहा है। नित्य और सत्यसे प्रेम अनित्य और मायासे घृणाने ही

हिन्द-महर्षियोंका कर्म्मक्षेत्र इतिहासकी ओरसे हटाकर दर्शन शास्त्रकी ओर निर्धारित किया। यही कारण है कि भारतीय साहित्यमें इतिहासके अभावके साथ साथ दर्शन, न्याय और वेदान्त आज भी विश्व साहित्यमें अपनी तुलना नहीं रखते। या यों कहिये कि भारतीय महर्षियोंने सर्व्व व्यापी सच्चिदानन्द परमात्माकी सच्ची खोजको ही मानव जातिका वास्तविक इतिहास माना था। यह भी एक भारतीय गौरव है कि जिस समय चीन प्रारम्भिक विज्ञानका आविष्कार, बैबिलोनिया ज्योतिष और नैतिक नियमोंको शृंखलाबद्ध तथा मिसर मृतकोंकी बिरदावली लिखने और अपनी शिल्प कलाओं द्वारा मृतकोंको पुनर्जीवित करनेका प्रयत्न कर रहा था उस समय भारतवर्षके प्रधान मस्तिष्क गिरिकन्दराओंमें बैठकर अस्तित्व और नास्तित्व, मृत्यु और मोक्षके गम्भीर प्रश्नोंकी प्रतिध्वनिसे और वैदिक ऋचाओंमें उनके उत्तरोंसे संसारके सामने एक निराला ही तत्त्व उपस्थित करनेके प्रयत्नमें लीन थे—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नंभः किमासीग्दहनं गभीरं ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं नतर्हि न रात्र्या अन्ह आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्ने परः किंचनास ॥ २ ॥

ऋग्वेदः १०-१२-१२९

सृष्टिके आदिमें जहां अस्तित्व और नास्तित्वका प्रश्न नहीं था, वायु और आकाश जहां नहीं थे, क्या था? कहां था?

और किसकी संरक्षितामें था, अथाह जल था ? इत्यादि प्रश्न उपस्थित थे। उस समय न मृत्यु थी, न अमरत्व था, न दिन था और न रात्रिका अन्धकार वायु शून्य निस्वास लेनेवाला वही एक था जिसके अतिरिक्त सर्व्व शून्य था।

भावार्थ।

इसके बाद जब समाजने विस्तृत रूप धारण किया जीवनकी नवीन समस्यायें उठीं उस समय इस देशने अर्थ शास्त्र को न्यायकी परिधिमें और राजनीतिको नीतिकी परिधिमें रखकर धर्म्म-शास्त्र और राजधर्म्मको धर्म्मकी नीव पर खड़ा किया और धर्म्मको ही एक मात्र समाज जीवनका आधार माना। इस विनाशी क्षणभङ्गुर जगतके प्रति उदासीनता और अनादि, अनन्त अतिन्द्रिय जगत पर असीम विश्वासने ही जातीय शिल्प और इतिहासके रूपमें आत्मप्रकाश किया। एक ओर भारतका इतिहास विश्व इतिहास, भारतवर्ष विश्व भारत, और दूसरी ओर भारतीय शिल्पने प्रतिमाओंके रूपमें नहीं अरूपमें सार्थक होकर रूपातीतको प्राप्त किया।

इसलिये: हिन्दुओंकी ऐतिहासिक उदासीनताका निदान आधुनिक इतिहास वेत्ताओंकी बुद्धिके परे हैं। यह उलझन सम्भवत कोई अध्यात्मविश्लेषक ही सुलझा सकें! परन्तु हमें यहां केवल भारतवर्षके इतिहास पर विश्वका प्रभाव और अन्तर्राष्ट्रीय इतिहासके विकाशमें भारतवर्षका प्रभाव ही दिखाना है। आज कल जब कि राष्ट्रोंमे पारस्परिक घृणाके भाव दिखाई दे रहे हैं

ऐसे समयमें इस अन्वेषणका लाभ, केवल ऐतिहासिक दृष्टिसे ही नहीं वरन गौरवमय अतीतकी तुलना और स्मरणसे वर्त्तमान समयमें भविष्यतका मंगलमय पथ निर्देश कर सकेगा ।

प्रथम प्रकरण

पहले हजार वर्षका सिंहावलोकन ।

(सन् १४०० से ५०० बी० सी०)

भारतवर्ष "संसारसे अलग" नहीं है—इसका ऐतिहासिक प्रमाण ।

लोगोंकी धारणा है कि भारतवर्षने अपनेको अन्य देश और जातियोंसे पूर्णतया भिन्न रखा । यद्यपि यह धारणा नितान्त निर्मूल नहीं कही जा सकती तौ भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस धारणामें सत्यका अंश बहुतही कम है । इस धारणाका आधार हिन्दू पण्डितोंकी संकीर्णतापूर्ण नीति और कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका भारतीय शास्त्रोंका भ्रान्तिमूलक पठन पाठन और चित्रण है । यद्यपि प्राचीन भारतीय लिपि और प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंके पठन पाठनका परिश्रम सराहनीय है तौ भी पाश्चात्य विद्वानोंका ज्ञान उतनी ही परिधिमें सीमाबद्ध रहा और इसीलिये भारतीय जीवनके सर्वाङ्ग इतिहासको छोड़कर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान कुछ अंगों पर ही पड़ा । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो भारतीय इतिहासका चित्र अंकित किया गया उसमें केवल यही दिखाया गया है कि यह देश जात पांतके झगड़ेमें ही व्यस्त है और यहांके लोग केवल वेदाध्ययन, यज्ञ यागादि और दर्शन शास्त्रों की बड़ी बड़ी उलझनोंमें ही पड़े रहते हैं परन्तु जब हम भारतीय

इतिहासको निष्पक्ष दृष्टिसे देखते हैं तो ऐतिहासिक चित्रका रूप और रंग भिन्न हो दिखाई देता है। भारतीय इतिहासकी सत्य घटनाओंका उल्लेख उपन्यासकी काल्पनिक घटनाओंसे कहीं अधिक रोचक और आश्चर्य्यजनक हैं। पुरातत्ववेत्ताओंकी खोजने पाश्चात्य विद्वनोंकी भारतवर्ष सम्बन्धी उस निर्मूल धारणाको बिलकुल भ्रान्त सिद्ध कर दिया है।

जर्मन पुरातत्व वेत्ता ह्यूगो विनक्लरने बोगाज क्यूई ५ के जिस शिलालेखका उद्घाटन किया है उससे भारतीय इतिहासकी सीमा बहुत अधिक बिस्तृत हो गई है (यह शिलालेख ईरानके कैपिडोशिया ६ नगरमें पाया गया है और इसमें उल्लेख मिलता है कि हिटाइट७ और मिटानी८ नामक दो युद्ध करनेवाली जातियोंके बीच सन्धिके समय वेदिक देवता मित्र, वरुण और इन्द्रादिको साक्षी माना है और सन्धिके निदर्शन स्वरूप दोनों राजघरानोंके वैवाहिक सम्बन्ध बन्धनके आशीर्वादके लिये नासत्य ९देवताओंका आह्वान किया गया है। दे० डा० स्तेन कण्वकी "मिटानी जातिके आर्य्या देवता"—माडर्न रिभ्यू १९२१)। पुरातत्ववेत्ताओंने इस शिलालेखका समय १४०० बी० सी० निश्चित किया हैं।

इस शिला लेखसे भारतवासियोंकी अन्तर्राष्ट्रीयताका पता लगता है और इससे यह भी निश्चित होता है कि भारतवासी सन्धि और शान्तिके समय अपने देवताओंको साक्षी माना करते थे। भारतवासियोंकी यह अन्तर्राष्ट्रीयता फिनिशियनों १०

प्रम्बानम, जावा। रामायण का दृश्य। पृ: ७४

की स्वार्थमूलक और रोमनोंकी साम्राज्याभिलाषा पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीयतासे कहीं भिन्न है। जिस समय पाश्चात्य देशोंमें रक्तकी नदियां बह रहीं थीं, मिसर थटमोसिस तृतीय११ की विजय और संसारके दिग्विजयकी गर्व्वपूर्ण घोषणायें बिजय गीतिकाओंमें कर रहा था, एकियन१२ जाति ईजियनों१३ की राजधानी नोसस१४ के प्राचीरोंपर आक्रमण कर रही थी, मेडिटरेनियन समुद्रमें मिनोअन १५ जातिका नष्ट प्राय प्राधान्य टिमटिमा रहा था और व्यापारकुशल फिनिशियन जाति पूर्ब्बीय और पश्चिमीय देशोंके बीच एक वाणिज्य केन्द्र स्थापनकी चिन्तामें लगी हुई थी—उस समय उन भारतीय मित्र, वरुण और इन्द्र देवताओंका उल्लेख कैपिडोशियामें शान्तिस्थापकके रूपमें शिलालेखमें पाया (१५०० बी० सी०) जाता है। वे पाश्चात्य जातियां अधिक दिनोंतक अपना प्रभुत्व न रख सकीं। एकियनोंका प्रभुत्व १२०० बी० सी० में ट्रोजन युद्ध१६ द्वारा नष्ट हो गया। फिनिशियनोंका वाणिज्य साम्राज्य डोरियनों १७ ने नष्ट कर दिया। किन्तु उस समय एशियामें (जम्बु द्वीप ?) ऐसीरियनोंने अपनी धाक जमा रखी थी।

आर्य्य और अनार्य्योंका सम्मिश्रण

पश्चिम देशोंमें जब कई शताब्दियोंसे शक्ति साम्राज्य और प्रभुत्वकी यह ताण्डवलीला चल रही थी, उस समय भारतवर्ष में क्या हो रहा था; इसका कोई पता नहीं चलता। परन्तु

भारतीय जीवन और चिन्ताधाराओंका समुद्र किस ओर लहरें ले रहा था—सामाजिक जीवनकी कैसी कैसी कठिन समस्यायें भारतवर्ष हल कर आगे बढ़ रहा था इसका कुछ कुछ परिचय ऋग्वेदसे आरम्भ कर ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्के अतुलनीय साहित्य भण्डारमें पाया जाता है। यह ऋग्वेद यदि मानव जीवनका कीर्त्ति स्तम्भ न कहा जाय तोभी इसे इन्डो-योरोपियन जातिका सर्व्व प्रथम कीर्त्ति स्तम्भ कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता। मिश्र, असीरियन, एकियन और डोरियन जातिको अपनी जातीय प्रतिष्ठा करनेके लिये उन देशोंके आदिम अधिवासियोंके साथ संग्राम करनेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, वैदिक आर्यों के सम्मुख वे हो कठिनाइयां उपस्थित हुई थीं; परन्तु भारतीय आर्य्यों ने उन कठिनाइयोंका समाधान जिन उपायोंसे किया था, वे उपाय भारतीय इतिहासमें सदाके लिये स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेंगे।

आर्य्यों को आदि अनार्य्यों के साथ युद्ध अवश्य करना पड़ा पर आर्य्यों ने अनार्य्यों के जीवित रहने तथा उनकी स्वाधीनताका अधिकार स्वीकार कर लिया था और दोनों जातियोंने मिल कर एक नवीन सभ्यता और साधनाकी नीव डाली। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भारतीय सभ्यतामें जितना हाथ आर्य्यों का है, अनार्य्यों का उसकी अपेक्षा कुछ कम नहीं है। (दे० डा० नाग रचित "आर्य्या-अनार्य्या मिलन" माडर्न रिव्यू-जनवरी १९२२ पृष्ठ ३१-३३)।

वैदिक युगके प्रारम्भमें गौरवर्ण आर्य्या और कृष्णवर्ण अनार्य्यों के युद्धका सूत्रपात दिखाई देता है। इनकी रणभेरीसे देश एक दिन निनादित हो चुका था अस्त्रोंकी झंकारसे आकाश कम्पित और इस देशकी भूमि रक्तसे प्लावित हो चुकी थी। सम्भव है कि वैदिक ऋषियोंने उसी तामसी समयको शान्तिमय दिवसकी ऊषा रूपसे आह्वानन किया हो :—

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पंथां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरंत आयुः॥

ऋग्वेदः म० १, अ० १६०
सु० ११३

उठो, उठो नवजीवनका संचार हुआ है।
बिखर गई तम राशि प्रभाका उदय हुआ है॥
छोड़ चलो पथ निशा भानु रवि पथिक हुआ है।
आ पहुंचे हम वहां आयुकी वृद्धि जहां है॥

भावार्थ

यथार्थमें भारतीय आर्य्यों का उद्देश्य प्राणी जगतके अस्तित्व का नाश नहीं, वरन् उसकी रक्षा तथा विस्तारका ही था। महावीर तथा बुद्ध प्रतिपादित अहिंसा सिद्धान्तके बहुत पहले ही भारतवर्षने जीवके प्रति दया और श्रद्धाका परिचय दिया था। विश्वभारतके इतिहासमें आर्य्य अनार्य्यों का यह मिलन सदा ही गौरवकी वस्तु समझी जायगी। रक्त, भाषा, साधना और संस्कृतिमें अत्यन्त विभिन्न इन दोनों जातियोंने

अपनी अनादि हिंसा और द्वेषकी आहुति इस पवित्र मिलनयज्ञ में देकर, मैत्री और प्रेमका दृढ़ बन्धन बांध एक विराट जाति और एक अपूर्व्व संस्कृतिकी नीव डाली।

महाकाव्यमें विश्वदिग्विजयका आदर्श

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत बड़े विवाद और कई संग्रामोंके बाद भारतवर्ष इस कल्याणमय आशीर्वादको प्राप्त कर सका था। उन सारे ही विवाद और संग्रामने धीरे धीरे सौर्य्य और सृष्टि नैपुण्यमें रूपान्तरित होकर भारतीय इतिहासका एक नवीन अध्याय प्रारम्भ कर नवीन भावधारा प्रवाहित की, इसीलिये अथर्व्ववेद, ब्राह्मण और आरण्यकमें जहां बड़े बड़े साम्राज्योंकी चर्चा सुननेमें आती हैं वहीं सार्व्वभौम नरपति और चक्रवर्तियोंकी चर्चा भी सुनाई देती है। उस समय दिग्विजय एकमात्र अभिलाषाकी वस्तु और राजाओंके शिरोमणि राजचक्रवर्ती होकर राज दण्ड परिचालनकी बलवती आकांक्षा प्रबल दिखाई दे रही थी। इस दुर्निवार लोभ और आकांक्षाके साथ साथ विराट युद्ध विग्रहका होना अनिवार्य्य था, अस्तु, इन्हींको आश्रय कर वर्त्तमान कथा, गाथा, काव्य और महाकाव्योंकी रचना हुई। ट्रोजनयुद्ध के कई शताब्दि बाद जैसे होमर १८ आदि कवियोंका प्रादुर्भाव हुआ, और उन्होंने प्रचलित गीत और गाथाओंके आधार पर "इलियड" और "ओडेसी" की रचनाकी, ठीक उसी प्रकार वेदिक युगके अन्त होते होते राम रावण और कौरव पाण्डव युद्धके कई शताब्दि बाद महाकवि वाल्मीकि और व्यास प्रगट हुए और उन्होंने

प्रचलित गीतगाथायें और चारणोंकी बिरदावलियोंके आधारपर रामायण ; और कृष्णायण (महाभारत) जैसे महाकाव्योंकी रचना की।

युद्धकी सामाजिक परीक्षा और उससे शिक्षा

वैदिक युगमें जाति और उपजातियोंमें पारस्परिक युद्धके निदर्शन पाये जाते है परन्तु रामायण और महाभारतमें एक सम्राटसे दूसरे सम्राटका, एक सार्व्वभौम नृपतिसे दूसरे सार्व्व-भौम नृपतिके संघर्षके उदाहरण पाये जाते हैं। घोर युद्ध और भयानक संघर्ष कहिनियोंने हा इन दोनों महाकाव्योंका बहुभाग घेर रखा है। संग्राम और संघर्ष की उच्चतर शिक्षा-ओंको मानवचित्त पर चित्रित कर देना ही कविकुल गुरूओंका प्रधान उद्देश्य था, जिनके युद्धकी नीव धर्म्म और न्याय पर था, विजय लक्ष्मीने उन्हींको वरमाला पहनायी। हिन्दू कवियोंकी धारणा थी कि युद्धमें विजय पराजयका ही एक नामान्तर है। यद्यपि भारतवर्ष सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनमें लोभ और हंसा, संग्राम, और संघर्षको अलग नहीं रख सका तौभी इन सबके होते हुए भी भारतने अपनी आत्म चेतना नहीं खोयी। युद्ध और संग्रामके ध्वंसके विषमय परिणामका अनुभव भारत अनादि कालसे करता आया है। इसीलिये रामायणमें विजयी राम, पराजित, मृत्युपथ यात्री, शत्रु रावणकी अन्तिम मृत्यु-शय्याके पास बैठ कर उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। इधर महा-भारतमें पितामह भीष्मकी शरशय्याके पास बैठकर विजयी युधि

ष्ठिर शान्तिका उपदेश सुन रहे है। प्राचीन भारतीय इतिहास में विजेताओंने इसी प्रकार विजितोंसे अपनी पराजय स्वीकार की थी। समाज और राष्ट्रीय जीवनपर संग्राम और संघर्ष का फल जब क्रमशः भीषण दिखाई देने लगा तब भारतवर्षने इस संग्रामलीलाको मनुष्यत्वकी अवमानना समझ महाभारत में शान्ति पर्वको जोड़ कर युद्धके विरुद्ध शान्ति घोषणा की। इस प्रकार युद्धकी वास्तविकता, उसके भयंकर परिणाम औ शोककारी भविष्यतमें होनेवाले फलका एक सामाजिक अनुभव के रूपमें सामना करते हुए भारतीय बुद्धिने शान्ति पर्व और भगवद्गीता ऐसी रचनाओंमें प्रतिपादित नवीन सिद्धान्तों द्वारा युद्ध अथवा संग्राम पर अपना अन्तिम निर्णय कह सुनाया। कई शताब्दियोंतक निरन्तर रक्त समुद्रमें गोते लगाते रहनेके कारण भारतवर्षका चित्त चञ्चल हो उठा। भय और घृणासे देशने अपना स्थान अलग बनाया। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ लोग उस समय ऐसे भी थे कि संग्रामका प्रयोजनीयताको अनिवार्य्य आत्मरक्षाका उपाय और अपनी शक्तिकी प्रतिपत्तिका कारण समझते थे। इसीके आधारपर कौटिल्य अर्थ शास्त्रमें मण्डल-न्याय१९ और षड्गुण्य नीति२० का सर्वप्रथम उल्लेख पाया जाता है। भारतका राष्ट्रीय जीवन एक और जब पतित हो रहा था उस समय कौटिल्यके इस राष्ट्र न्यायने उसमें सहारा लगाया। इधर एक आध्यात्मिक दल विशेषने इन युद्ध विग्रहोंकी आध्यात्मिक व्याख्या पृथ्वी और अणु परमाणुके संग्रामका रूपक

बांधकर की; और इन्हीं लोगोंने भगवद्गीता जैसे महान तत्वका-व्यकी रचना की। इसी प्रकार एक तीसरे दलने प्रेम और शान्तिके प्रचारकोही अपना आदर्श बनाया, उन्होंने कहा कि मनुष्य मानव जातिपर केवल मात्र प्रेम और शान्तिसेही विजय प्राप्तकर सकता है, सन्देह और संघर्षसे नहीं। इनके इस आदर्शका दिग्दर्शन महाभारतके शान्ति पर्व्वमें आज भी पाया जाता है।

क्षमा और विश्वमैत्रीका प्रचार

सम्पूर्ण भारतवर्षकी आत्मामें उस समय एक नवीन सृष्टि के लिये प्रसववेदनासी हो रही थी, भारतका वातावरण एक नवीन उत्कण्ठासे अधीर और भयंकर दुश्चिन्तासे आलोड़ित हो रहा था, मानों तुच्छ अहंकार आत्माभिमान और भीषण रक्त पातसे क्रोधित और निपीड़ित भारतकी आत्माशान्ति और मुक्ति कामनासे अधीर हो उठी थी। मनुष्यका मन जहां परम निर्भय उदार शान्ति और निर्मल प्रेमका अनुभव कर सकता हो, भारतने अपनेको उस कठिन साधनामें उत्तीर्ण कर लिया। साधनाकी उस पवित्र ज्योतिमें प्रज्ञा और प्रेमके उस राज्यसे भारतकी मुक्त आत्माने ऋषियोंके कण्ठसे [illegible] उपनिषद् की घोषणा मधुर सुरमें सुनायी :—

> शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः
> आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः
> वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तम्।
> दित्यवर्णन्तमसः परस्तात ॥

सुनो! अविनाशीकी सन्तान दिव्य धाम वासी मैंने उस महापुरुषको जान लिया है जो अन्धकारके परे सूर्य्यके सदृश प्रकाशमान है।

वह विश्वविमोहनी वाणी विश्वके दिक्‌दिगन्तोंमें ध्वनित और घरों घरोंमें मन्त्रित हो उठी और जिधर देखो उधर ही उसी ज्योतिर्मय महापुरुषकी खोज सुनायो दी। यह ध्वनि केवल स्वप्न न रही, विश्वकी कल्पना न रही, संसारने शीघ्र ही देखा, अस्ति-मज्जा और रक्त मांसका मनुष्य भारत वर्षके हृदयपर प्रेमकी साक्षात मूर्त्ति रूपमें अवतार ले रहा है। भगवान बुद्धदेवने सन्तप्त और त्रासित प्राणियोंको अहिन्साके पवित्र शान्तिमय उपदेशसे अभय प्रदान किया। कपिलवस्तुर१ शाक्य कुल विपुल ऐश्वर्य्य तथा समस्त विश्वब्रह्माण्ड उस महापुरुष की दृष्टिमें तुच्छ और त्याज्य दिखाई देने लगा। बुद्ध उस अनादि अनन्त सत्यके अन्वेषणमें आकुल हो उठे और जिस दिन उन्हें वह सत्य, वह परम ज्योति दिखाई दी, उसी दिन उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया। जो सत्य इतने दिन भारतके ध्यानमें छिपा था आज उसी सत्यने मूर्तिमान साक्षात् रूप धारण किया। धम्म जब जीवके रक्तसे रञ्जित, देवताओंकी पूजा जब यज्ञ और बलिदानके रक्तसे प्लावित, समाज तथा राष्ट्र जब हिंसामय संग्रामसे पीड़ितहो रहा था उस समय बुद्धदेवने भारतवर्षके हृदय पर खड़े होकर ऊंचे स्वरसे मैत्री और अपरिमेय प्रेम मंत्रकी घोषणाकी थी। "मामव जातिकी मुक्ति, प्राणियोंका जीवन

लेनेमें नहीं, वरन् अपना जीवन उत्सर्ग करनेमें है। मुक्तिका मार्ग हिंसा नहीं प्रेम, संग्राम नहीं शान्ति, क्रोध नहीं क्षमा है।' आत्मविस्मृत इस देशको बुद्धदेवने इस अमोघ मन्त्रसे दीक्षित किया, उन्होंने और भी कहा कि "यदि तुम सब कुछ चाहते होतो सब कुछ छोड़ना होगा, दुःख और यातनासे मुक्ति लाभ करना है तो अहंकारका नाश करना होगा, घोर अन्धकारके परे उस परम ज्योतिको पाकर यदि बुद्धत्व प्राप्त करना होतो सारी वासनाओंका "निर्वाण" करना होगा।" इसी अमरवाणी को उन्होंने देश देशान्तरोंमें और दीप दीपान्तरों में प्रचार किया था।

बौद्धयुगमें एशियाकी अवस्था।

राष्ट्रीय जीवनका इतिहास मानव जीवनके अपूर्व रहस्यमय जीवन पर कितना प्रकाश डाल सकता है? राष्ट्र क्षेत्रमें जोकुछ मानव जीवनका इतिहास प्रकाश डालता है वह बहुतही तुच्छ और नगण्य है। इसीलिये इतिहासके बीच बीचमें ऐसी कई एक घटनाये हो जाया करती हैं और एक एक महान पुरुषका आविर्भाव हुआ करता है, और उन्हींके कारण एक महान भावका प्रवाह बह जाता है कि जिसे राजनैतिक इतिहासकी परिधिमें रखने पर उसका कोई भी अर्थ समझमें नहीं आता। जातीय जीवनकी भावधारा बड़ी ही विचित्र और

रहस्य मय हैं, पद पद पर उसके निदर्शन पाये जासकते हैं। उपनिषदोंकी अभ्रान्त बिश्वब्यापकता और बुद्धके अलौकिक जगत प्रेमका उद्गम यदि मानव जातिकी ऐतिहासिक प्रयोजनीयताके अन्तर्गत न हो तौभी मानव जीवनकी परिपूर्णताके लिये संसारमें उसकी आवश्यकता है। इसी लिये प्रथम हज़ार वर्षके शेष भागमें (१४००-५०० बी० सी०) बुद्ध संसार की सेवाके लिये अपने जीवनका उत्सर्ग कर रहे हैं; जैनधर्म्मके प्रतिष्ठाता महावीर अहिंसाको धर्म्मका सर्वोत्कृष्ट तत्त्व मान कर उसका उपदेश कर रहे हैं; चीनमें चाउवंश २२ के राज्यकालमें लावटसे २३ और कनफ्यूसियेस (५००-४७८ बी० सी०) अपने उच्च सिद्धान्तोका प्रतिपादन कर रहे हैं; ताओ किआओ २४ (मार्गसम्प्रदाय) और जू—किआओ २५ (जिज्ञासु—सम्प्रदाय) भी उन्हीं जीवनके तत्वोंका—शान्ति, अहंका दमन; हृदयकी पवित्रता और प्राणीमात्रके जीवित रहनेके अक्षुण्ण अधिकारका प्रचार कर रहे हैं। इधर पश्चिम ईरान देशमें जोरस्टर २६ पहले होसे मानव जीवनके पवित्र आदर्शका प्रचार कर रहे हैं। उन्हींके आदर्शसे अनुप्राणित होकर दिग्विजयी ईरान सम्राट डरायसने विहिस्तून २७ और नक्षी रूस्तम् २८ में कई शिलालेख खुदवाये।

दरायसने कहा—(शिलालेखमें अङ्कित ५५०-४८५ बी० सी०)

"हम किसीके शत्रु, प्रवञ्चक, अत्याचारी और स्वेच्छाचारी नहीं है और इसी लिये अहुरमजदा और अन्यान्य देवता

ओंने मेरी सहायता कीहै"—उन्होंने और भी कहाकि "हे मनुष्यों तुम लोग अहुरमजदाके आदेशको सुनो वे तुमको साक्षात् दर्शन दें, भूल कर भी धर्म्म मार्ग मत छोड़ो और पापमें लिप्त मतहो"।

द्वितीय प्रकरण।

तृतीय हज़ार वर्षका सिंहावलोकन।

(५०० बी० सी से ५०० ए० डी०)

भारतवर्ष मानव जातिका अग्रदूत।

दरायसने कहा था "रस्तम् मा अवरदमा स्तरव" सत्य मत छोड़ो और पापका आलिङ्गन न करो-लावोटसे, कनफ्युसियस बुद्ध और महावीरने जिन सिद्धान्तोकी घोषणाकी थी सम्राट दरायसने अपने जीवन दीपनिर्वाणके पूर्व उसी महामंत्रको उत्कीर्ण करा कर मानो एक नवीन युगका प्रारम्भ कर दिया था। ईरानकी शासन डोर जब दरायसके हाथमें थी उस समय ईरान साम्राज्यका सिर गर्व्वोन्नत था। कई योजनों तकके प्रदेश ईरान साम्राज्यान्तर्गत समझे जाते थे। इधर पञ्चनदा (पंजाब) कातट, उधर यूनान राज्यकी दुर्भेद्य प्राचीर, जिधर देखो उधरही भिन्न भिन्न प्रदेशोंके शासक दरायसके खड्गका लोहा मान रहे हैं। वर्त्तमान इतिहासके पवित्र सङ्गम स्थलमें ईरान सम्राट दरायस की अटल कीर्ति विद्यमान है। इसी ईरान सम्राज्यके अतुलनीय वीर्य्य और विक्रमने एक दिन यूनानके महाकवि एसकाइलस २९ को ईरानकी बीरगाथा को मधुरवीणा ध्वनिमें गानेके लिये प्रेरित किया था और योरोपीय इतिहासके प्रथम जन्मदाता हेरो-डोटसके हृदयमें

इतिहास रचनाकी प्रेरणा उद्दीप्तकी थी। उस वीर्य्य और विक्रमके सामने मिसर और मैसोपटेमियाका विस्तृत राज्य बालूकी भीतकी नाईं विलीन हो गया।

उस मिसर और मैसोपटे-मियाके ध्वंसा-वशेष पर विशाल ईरान साम्राज्यकी नीव पड़ी। यही कारण है कि ईरान सम्राटके सिंहासनमें वहांके शिल्पियोंने अगणित राजाओंकी प्रतिमूर्त्तियां विजित और बन्दित रूपसे हाथ जोड़े और नत मस्तक अंकितकी है।

जैसे बाहुबलके गौरवसे ईरान सम्राटकी साम्राज्याभिलाषा बढ़ रही थी उसी प्रकार यूनानको भी साम्राज्याभिलाषाकी मोहमयी मदिराने विमोहित कर दिया। उस ओर यूनानकी देखा देखी रोम भी उन्मत्तहो उठा। इसमें सन्देह नहीं कि यूनानकी बढ़ती हुई शक्तिने ईरानकी साम्राज्याभिलाषा को कुछ समयके लिये दबा रखा परन्तु वह उत्कट अभिलाषा अधिक समय तक टिक न सकी क्योंकि यूनानियोंमें उस राजनीतिक प्रज्ञा और अन्तर्दृष्टिका अभाव था। डीलौस ३० की परिषद् द्वारा नियोजित संगठनकी उच्च आकांक्षा यूनानके पेलोप-निशियन युद्ध ३१ में स्वाहा होगई। यूनान और उसके साथ साथ योरोपने पर देश लुंठन और साम्राज्य बिस्तारको ही राष्ट्र जीवनका परमध्येय मान लिया। एथेन्स३२ स्पार्टा ३३ सभी उसी उन्मादमें उन्मत्त हो गए और सभी अपने अपने राज्यके साथ सारे जगत को बांध देनेका काल्पनिक स्वप्न

देखने लगे पर किसीका यह स्वप्न-साम्राज्य फलीभूत न हुआ।

पाश्चात्य जगतके डेढ़ सौ वर्षके इस निष्फल प्रयत्नके बाद मैसिडोनियाधिपति ऐलैकजेन्डर (सिकन्दर) ने पुनः एक बार सुविस्तीर्ण साम्राज्य स्थापनका प्रयत्न किया और यूनानके समुद्रसे लेकर सिन्धु नदाके तीर तक साम्राज्य स्थापनमें सफलीभूत भी हुआ। वाह्यदृष्टिसे यद्यपि नवप्रतिष्ठित यूनान साम्राज्य ईरान साम्राज्य पर जयी दिखाई देता है तौभी यदि विचारा जाय तो यही कहना होगा कि इस साम्राज्यवादका आदर्श यूनानने ईरानसे ही पाया था और यह भी निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यूनान साम्राज्यके जातीय जावनको विजय और युद्धके नाना भावोंसे अनुप्राणित कर रूपान्तरित करना भी ईरान साम्राज्यका ही कार्य्य था—और यह सर्व्वमान्य भी है। विश्वसाम्राज्यवादका आदर्श पाश्चात्य देशोंके लिये भले ही नवीन हो पर प्राचीन देशोंके लिये वह एक पुरानी संस्था है। विश्वसाम्राज्यवादका आदर्श पाश्चात्य जगतमें सर्व्वप्रथम यूनान ही लाया था परन्तु प्राचीन वेदिक युगमें भी इस विश्वसाम्राज्य-वादका आदर्श देखनेमें आता है और उसी अनादिकालसे इतिहासने स्पष्ट घोषणा की है "पाशविक शक्ति, बाहुबल, हिंसा और संग्रामके ऊपर जिस साम्राज्यकी नींव डाली गई हो वह साम्राज्य चाहे जितना अतुल वीर्य्यशाली, विशाल और विपुल क्यों न हो उसका परिणाम—ध्वंस ही है। यूनान और

रोमने इतिहासके इस अटल सत्यको और उसके अवश्यम्भावी परिणामको स्वीकार न किया। यूनानाधिपति ऐलेकजेन्डर और रोमके भाग्य विधाता सीजरोंने भी इतिहासके इस इङ्गितसे लाभ नहीं उठाया। पश्चिमीय देशोंने भारतीय इतिहासकी इस शिक्षासे लाभ न उठाकर उसी परदेश लुंठन और विश्वसाम्राज्याभिलाषाके उद्देश्य साधनमें अपनी सारी शक्ति लगायी। उसी मैसिडोनियाधिपतिसे प्रारम्भकर आज पर्य्यन्त अङ्गरेज, जर्मन, फरासीस, इटालियन, इन सभोंने उसी मोहमयी मदिरासे उन्मादित होकर आत्मबिक्रय कर दिया। जिस घृणित आदर्शकी पुष्टिके लिये, अङ्गुलियों पर गिने जाने योग्य थोड़ेसे मनुष्योंके स्वार्थके लिये, राष्ट्रका जीवन उत्सर्ग, परराज्य लुंठन और पर-पीड़न करना पड़े उस आदर्शके चरणोंमें मनुष्यत्व की आहुति आज पर्य्यन्त वे राष्ट्र दे रहे हैं।

—:—

सम्राट धर्माशोक

जब योरोपका वायुमण्डल मोह मेघाच्छन्न हो रहा था उस समय भारतवर्षने संसारके सन्मुख विश्व साम्राज्यवादका, प्रेम और शांतिका नवीन आदर्श उपस्थित किया। मौर्य्य सम्राट अशोक ईस नवीन आदर्शके प्रवर्त्तक बने। बुद्धदेवके निर्वाणके २५० वर्षबाद भारतवर्षमें और एक महापुरुषने जन्म ग्रहण किया और उन्होंने भारतीय इतिहासके परम सत्य आदर्शको समझकर राष्ट्रजीवनके आदर्शमें बिल्कुल परिवर्त्तन कर दिया। प्रेम

और शान्तिकी नींव पर प्रतिष्ठित सम्राट अशोकके इस नवीन आदर्शने राष्ट्र जगतके इतिहासमें एक अपूर्व अध्याय जोड़ दिया, परन्तु उस महान आदर्शके गौरवको जीवित रखनेका प्रयत्न करनेवाला अशोककी मृत्युके बाद और कोई न रहा; इसीलिये वह आदर्श आज स्वप्न होरहा है। अशोकने भारतीय इतिहासके जिस स्थानको अधिकार कर रखा है उसके पीछे अतीतकी ओर जितनी दूरतक मनुष्यकी दृष्टि जा सकती है, दिखाई देगा अनेक बड़े बड़े साम्राज्योंका ध्वंसावशेष और सामने इतिहासके पृष्ठों पर रक्ताक्षरोंसे लिखी हुई अवश्यम्भावी परिणामकी शोचनीय काहिनी तथा इन दोनोंके बीचमें अशोककी शान्ति और मैत्रीकी शुभ्र पताका। अशोकके राष्ट्रवादकी स्थिर अन्तर्दृष्टि और उच्च आदर्शका जगमगाता हुआ उच्चतम प्रकाश अपने पीछे के इतिहासको लांछित, धिक्कृत, और परराज्य लोभी रक्तलोलुप राष्ट्र नेताओंके विद्रूप हास्य और बलदर्पको तथा घोर स्वार्थकी नीतिको लज्जित और अवमानित कर रहा है। अशोकके धर्म्म-विजयके आदर्श प्रेम और कल्याणपर प्रतिष्ठित इस साम्राज्यवाद-का आदर्श मानव इतिहासके सर्व्वोत्तम विकाशका निदर्शन है।

सम्राट अशोककी धमनी में मौर्य्य रक्त प्रवाहित हो रहा था। समस्त भारतमें एक कलिंगको छोड़कर सारा देश मौर्य्योंका आधिपत्य स्वीकार कर चुका था।

अशोकने सिंहासना रोहण कर प्रथम ही कलिंग विजयकी यात्राकी उस भीषण युद्धमें सत सहस्र योद्धाओंको आत्माहुति

देनी पड़ी । रणक्षेत्र रक्तसे रंजित हो उठा । कलिंग राज्यने अविलम्ब मौर्य्योंकी अधीनता स्वीकार की । विजय तो हुई परन्तु राज्यविस्तार और साम्राज्यवादके इस निष्ठुर अभिनय, इस अगणित भीषण प्राणि हत्या, भयंकर रक्तपात और प्रवाहित रक्त की नदियोंने अशोकके हृदयमें एक दारुण कठोर आघात पहुंचाया। उन्हें अपनी भूल स्पष्ट दिखाई देने लगी और उन्होंने संसारके सामने उदारतापूर्व्वक अनुतप्त हृदयसे अपनी भूल स्वीकार की । जिन्होंने उनको देखा होगा वे ही अशोकके हृदयमें किस वेदना, किस अनुताप और किस चिन्ताने मन्थन किया था, समझ सकते हैं । उन्होंने अपनी दारुण चिन्ता हार्दिक वेदना और अनुताप की कथाओंको कलिंग अनुशासन की प्रस्तर लिपि पर उत्कीर्ण कराया है । इस चिन्ता की चितामें तप कर सम्राट अशोकने इस परम सत्यको समझा था कि "राज्य और धनकी जय वास्तविक जय नहीं है प्रेम और शांतिसे मनुष्यके चित्तपर अधिकार ही वास्तविक जय है ।" इसके बाद जिस बीस वर्ष तक अशोक जीवित रहे उन बीस वर्षों का इतिहास मनुष्यकी आत्मिक जागृति, जगत कल्याणके असंख्य सद् अनुष्ठानोंकी पुण्य गाथा से परिपूर्ण दिखाई देता है । और सम्राट अशोकका धर्म्म राज्य यूनानसे आरम्भ होकर इधर विराट चीन साम्राज्यतक सारे भूमण्डलको एक मन्त्रसे अनुप्राणित कर रहा था और प्रेमको पूर्व्व और पश्चिमने परस्पर आलिंगन किया था । साम्राज्मवादका यही श्रेष्ठतम और उच्चतम आदर्श है । विश्वा

नुभूतिका महान सत्य जो उपनिषदोंमें ऋषियोंने गाया था उसी सत्यने एक दिन बुद्ध देवमें मूर्त्तिमान होकर सार्थकता लाभ की थी और उसके २५० वर्ष बाद एक दिन बुद्ध देवकी मन्त्रवाणी को प्रतिध्वनित कर संसारके मंगलेच्छु प्रियदर्शी सम्राट अशोकने कहा 'सब्ब मुनिषामें पजा' सब प्राणी मेरी सन्तान हैं। उसी दिन उपनिषद् उद्भासित उस सत्यने बुद्ध प्रचारित उस मन्त्रके रूपमें एक नवीन रूप धारण किया। उस सत्य और उस मंत्रने पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर हिंसा और विद्वेषाकुलित इस समाज और राष्ट्र को, संग्राम और संघर्षमें लिप्त जाति-समूहको और रक्त स्नात इस पृथ्वी मण्डलको प्रेम, शान्ति और कल्याणके शीतल जलसे अभिषिक्त किया।

सम्भव है कि सर्व्वमान्य इस किंवदन्तिमें कुछ सत्य हो कि भारतवर्षका अन्तरंग और वहिरंग सारा ही संसारके देशोंसे पृथक हो रहा था, परन्तु विश्वसे भिन्न इस भारतवर्षने ज्योतिर्मय ज्वलन्त उस महापुरुषको कैसे जन्म दिया, इतिहासने आज पर्य्यान्त भी इस प्रश्नके उत्तरमें मौनावलम्बन ही कर रखा है। बोगज क्युईके शिला लेखके समयसे प्रारम्भ कर बिहिस्तान शिला लिपि पर्य्यान्त इस एक हजार वर्ष के सुदीर्घ कालमें भारतके साथ बहिर्जगत का क्या सम्बन्ध था इस विषयमें अनुमानके आधारके अतिरिक्त और कुछ कहा नहीं जा सकता, तौभी ऐतिहासिक अनुसन्धानसे यह अवश्य कहा जा सकता है कि भारत वर्ष केवल दैव पर निर्भर कर बैठा नहीं रहा। ईसा जन्मके १५००-वर्ष पूर्व भी वैदिक आर्यों ने उत्तर एशिया माइनर और

बैबिलनसे प्रारम्भ कर मिडिया पर्य्यान्त देशोंसे वाणिज्य सम्बन्ध स्थापन किया था।

भाषा तत्ववित्तोंका कथन है कि ऋगवेद और जिन्दावस्ताकी आलोचनासे पता चलता है कि भारत और ईरानका ऐतहासिक सम्बन्ध बहुत ही निकटतर रहा है यद्यपि इन दोनों देशोंके सम्बन्ध का विस्तृत अध्याय इतिहासमें वर्तमान है तौ भी ऐतिहासिक सुनिश्चित तथ्य घटनाओंकी बहुत ही कमी है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ एरियनने यह अवश्य लिखा है कि भारतके पश्चिम प्रान्तकी कुछ जातियोंने असीरिया सम्राटका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था पर यह कथन कि असिरियाकी रानी सेमिरामिसने भारत आक्रमण किया केवल कपोल कल्पना मात्र है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मणमें और बैबिलोनियन पुराणमें विराट प्रलय प्लावनकी कथा एक ही रूपसे पाई जाती है, इससे भी भारत और मैसोपटेमियाका निकट तर सम्बन्ध सिद्ध होता है। सम्भव है कि इस बातमें भी कुछ सत्य हो कि भारतने बैबिलोनियासे ज्योतिष विद्याके कुछ तत्व और लोहे (धातु) की प्रयोजनीयता सीखी हो।

ईसाइयोंकी पुरानी बाईबलमें बन्दर और मोरोंका उल्लेख पाया जाता है, कई पुरातत्ववेत्ता पण्डितोंका कथन है कि यह मोर और बन्दर भारतसे लाए गये थे, पर कई विद्वान इसे अस्वीकार करते हैं। परन्तु रालिन्सन और केनडीने (जे० आर० ए० एस १८९८) बहुत दिनों पहलेही यह प्रमाणित कर दिया है कि

दक्षिण भारत और पाश्चात्य जगतका व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन कालसे चला आया है। सेमिटिक-जाति उन दिनों व्यापारमें विशेष निपुण समझी जाती थी और इस जातिके व्यापार प्रधान लोगोंने भिन्न भिन्न देश और जातिके लोगोंमें व्यापारिक सम्बन्ध स्थापितकर रखा था। सम्भव है इसी वाणिज्य बिस्तारके लिये ही सेमिटिक जातिने प्राचीन वर्णमालाका प्रचार किया था। यूनान और भारतने साथ ही साथ सेमिटिक३४ जातिसे अपनी २ वर्णमालाओंको प्रस्तुत करनेका उत्साह प्राप्त किया था (८०० बी० सी०) इसके अतिरिक्त ईराम सम्राट काइरस३५ के भारत सीमान्त आक्रमणकी कथा विश्वास न भी की जाय तो भी यह बात अवश्य स्वीकार करनी होगी कि पश्चिम भारतके ईरान शासकोंके उत्साहसे ही भारतमें खरोस्ट्री३६ लिपिका प्रचार हुआ था। यह भी निस्संकोच कहा जा सकता है कि जिन्होंने भारतवर्षको सबसे पहले इतिहासकी परिस्फुटित परिधिमें स्थान दिया था वे ईरान सम्राट दरायस ही थे। इन्हीं सम्राट दरायसका आदेशपत्र लेकर स्काईलक्स३७ने भारतकी ओर समुद्रयात्राकी थी और ईरानसे सिन्धु तक समुद्र मार्गका आविष्कार किया था और इसी आविष्कारके फलसे पश्चिम भारतमें एक दिन दरायसने अपना आधिपत्य जमाया था। हेरोडोटसने लिखा है कि धन और जनकी तुलनामें ईरान सम्राट द्वारा अधिकृत भारतका वह प्रदेश सबसे अधिक समृद्धिशाली था। इसी समयसे भारत और ईरानके बीच सुप्रतिष्ठित सम्बन्धकी स्थापना हुई थी

इसके बाद भारतीय और ईरानी सेनाने कन्धे से कन्धा मिलाकर सन ४७९ बी० सी० में प्लेटिया३७ के रणक्षेत्रमें मारडोनियस३८ की सेनाध्यक्षतामें यूनानोंके विरुद्ध युद्ध किया था।

मौर्य्या शिलपमें भी कई स्थल पर ईरानियन अनुप्रेरणाके चिन्ह प्रस्फुटित दिखाई देते हैं। परन्तु इससे यह भी न समझना चाहिये कि भारतवर्षके इतिहासमें ईरानाधिपतिने कुछ विशेष उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण कार्य्या किये हों अथवा सम्राट अशोकके आदेशों पर वा साम्राज्यपर ईरानी साधना और सभ्यताने कुछ विशेष प्रभाव जमाया हो।

परन्तु ईरानियोंका समय पाशविक बल और साम्राज्यलोलुपताका केवल रूपान्तर मात्र था। इस राष्ट्रनीतिको मानव जातिके कल्याणमें नियोजित करना, मनुष्य चित्तको उन्नत बनाना, प्राचीन साम्राज्य लोलुपताके शोचनीय आदर्शको प्रेम और कल्याणकी भित्ति पर प्रतिष्ठितकरना, मानवजातिका संगम सेतु बनाना तथा इस स्वप्नको सर्व्वप्रथम वास्तविकताका रूप देनेवाले बौद्धसम्राट धर्म्माशोक ही थे। महाभारतके धर्म्मराज्य स्थापनकी भविष्यद् वाणीको उन्होंने ही सर्व्वप्रथम कार्य्यमें परिणत किया था। जिस युगमें सम्राज्यवादका प्रधान अधिष्ठाता रोम अपने सर्व्वप्रधान और सर्व्वशक्ति सम्पन्न कार्थेज३९ को प्युनिक४०युद्धमें पराजित करनेको अविश्रान्त परिश्रम कर रहा था, अशोक उस समय देश देशमें जाति जातिमें प्रेम और शान्तिकी मिलन पूर्णिमा मनानेको व्यस्त होरहे थे। अशोकका यह नवीन

आदर्श राष्ट्रनीतिका एक नवीन पथ मानव इतिहासमें एक अभूतपूर्व्व घटना थी। सम्राट अशोक अपने आदर्शोंका प्रचार केवल भारतवर्षमें कर शान्त न हुए, उन्होंने अपने धर्म्मसहयोगियोंको सीरिया (उस समय अन्टियोकसके अधीन) मिस्र (टालेमीफिलेडेलफस) काइरीन४१ (मेगासके अधीन) मैसिडोनिया (अन्टीगोनस गोनाटस) ओर एपिरस४२ (अलकजेन्डर) आदि सुदूर देशोंमें भेज अपने आदर्श ओर धर्म्मका प्रचार कराया था। इनकी शिलालिपिमें अनन्त काल तक रहनेवाले अक्षरोंमें उन सब देश और उनके नरेन्द्रोंके नाम पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध साहित्यमें सम्राट अशोकका अपने पुत्र महेन्द्र ओर कन्या संघमित्राको सिंहल और कई धर्मदूतोंको स्वर्णभूमि (ब्रह्मदेश) में भेजकर धर्म प्रचार कराना पाया जाता है। मनुष्य जातिने पृथ्वीके इतिहासमें सर्व्व प्रथम राष्ट्रनीतिका यह एक नवीन विराट रूप देखा। इस भारतके महामानव सागरतट पर जो एशिया, अफ्रिका और योरोपका महामिलन प्रतिष्ठित हुआ था आज सम्राट अशोकने भारतके मुखपात्र बन कर यज्ञके प्रधान ऋत्विक रूपसे आशीर्वाद मन्त्र उच्चारण किया।

सम्राट् अशोककी इस आदर्श गरिमा, ऐश्वर्य्य और विश्व-मैत्रीके सामने अलकजेन्डरका सैनिक दिग्विजय मलिन होगया। एलेकजेन्डरने अगणित शक्तिशाली शत्रुओंकोपराजित कर अपनी गौरवान्वित विजय सेनाके बलपर एक विपुल साम्राज्यकी

स्थापना की थी उसके भीतर भी वही पुराने पशुबल और बाहुबलकी बीभत्स लीला दिखाई दे रही थी। अप्रत्यक्ष रूपसे अलेकजेन्डरने यूनानी सभ्यताके विस्तारमें कुछ सहायता अवश्य की थी परन्तु मानव प्रेम ओर प्रीतिके आदान प्रदानमें किसी प्रकारकी भी उन्नति दिखाई नहीं दी। भारतके पश्चिम प्रान्तमें रक्तपातका बीभत्स अभिनय होगया, परन्तु भारतके काव्य साहित्य, इतिहास और पुराणमें, इसकी छाया भी दिखाई नहीं देती मानो समस्त भारतवर्षने उस रक्ता-भिनयकी ओर घृणासे दृष्टिपात करना भी पाप समझा। इधर दिग्विजयी अलक जेन्डर अविश्रान्त युद्धसे क्लान्त मगध सम्राटकी शक्तिसे भयभीत भारतकी सीमाके भीतर प्रवेश करतेही लौट गया। यूनान की बिजयका यह प्रहसन भारतके हृदय परसे दुस्स्वप्नकी तरह अतीत कालकी अनन्त कन्द्राओंमें विलीन हो गया। समझमें नहीं आता कि भारतीय साहित्यने अलेकजेन्डरके प्रहसनके साथ साथ निर्ग्रन्थ जैन मुनियोंकी गौरवमयी घटना पर भी मौनावलम्वन क्यों किया (सम्भव है कि भार तीय साहित्यमें निर्ग्रन्थोंका उल्लेखन रहनेका कारण उनके कुछ वेदिक बिरोधी बिचारहो सकते हैं)। अशोकके पितामह मौर्य्यसम्राट चन्द्र गुप्तने देशके समस्त विदेशी शत्रुओंको मार भगाया (३३०-२ ६८ बी० सी०) और यूनानके तृतीय सेनानायक सेल्यूकस निकेटर४३ को पराजित कर पैरोपनि सदाई४४ एरिया४५ अराकेशिया४६ और जेड्रोसिया४७ आदि प्रदेश छीन लिये।

विजित और पराजित दोनों राज्योंमें सन्धिबन्धन किया गया (३०० बी०सी०) और इस विजयके उपलक्षमें सेल्यूकस निकेटरने अपनी कन्या हेलेनके साथ सम्राट चन्द्रगुप्तको बिवाह बन्धनमें बांधे कर उस सन्धिपत्र पर अटल मुद्रा लगा दी। सीरियाकी राजसभाने मेगस्थनीज नामक एक ब्यक्तिको राजदूत बनाकर भारत सम्राट चन्द्रगुप्तकी राज्य सभामें भेज दिया। इन्हीं मेगस्थनीजने अपनी "इन्दिका" नामक पुस्तक में कई सामयिक बहुमूल्य विवरणोंका उल्लेख किया है। मेगस्थनीजके पीछे बिन्दुसारकी राज सभामें सिरियासे प्रेरित होकर डीईमेकस ने कुछ दिनोंतक दूतकार्य्य किया था। इन्ही बिन्दुसारके राज दरबारमें मिसराधिपति टालेमी फिलाडेलफसने डायोनियस नामक एक और व्यक्ति को दूत बनाकर भेजाथा (२८५—२४७ बी० सी०) उसके बाद सम्राट अशोकने भारत और यूनानको एक मिलन सूत्रमें बांध दिया था। अशोककी मृत्युके अन्तिम समय तक भारत और यूनान साम्राज्यका सम्बन्ध जेता बिजेता रूपसे नहीं था वरन् यूनानने समझ लिया था कि भारतवर्ष शक्ति सम्पन्न, सभ्यता और साधनामें अपूर्ब्ब, हमसे किसी भी अंशमें कम नहीं है; इसीसे भारतबर्षपर यूनानियोंने अपना आधिपत्य और अपनी संस्कृतिका बिस्तार करनेका साहस नहीं किया और यही कारण है कि इतने दिनोंके बाद भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर यूनानका कोई प्रभाव न पड़ा।

अशोकका नवीन राजधर्म्म और उसकी राजनैतिक परिणति।

इतिहास इसका साक्षी है कि इस समयसे यूनानी सभ्यता और यूनानियोंके ऐश्वर्य्यका ह्रास प्रारम्भ हो गया और इस ध्वंसोन्मुख जातिके अविशेष पर रोमने अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनकी नीव डाली। यूनानके शिल्प और साहित्य पर दिनों दिन इस राष्ट्रीय जीवनके पतनका आभास प्रस्फुटित होने लगा। यूनानियोंके धर्म्म और जातीय जीवनमें ऐसी कोई उत्साह पूर्ण घटना ढूंढ़ी नहीं मिलती थी कि जिससे यूनान जाति और साम्राज्य नवीन शक्तिसे अनुप्राणित होकर जीवित हो उठता। यही कारण है कि जब यूनानका हेलियोडोरस४७ और मीनेन्डर उस मर्णोन्मुख सभ्यताकी पताका लेकर भारतवर्षमें आ पहुंचे तो यूनानका जातीयधर्म्म, सभ्यता और संस्कृति उन्हें अपने बन्धनमें न रख सकी और भारतीय धर्म्म, सभ्यता और संस्कृतिने उन्हे विमोहित कर दिया। बेस नगरके ४८ गरूड़स्तम्भमें यूनानराज हेलियाडोरसके भागवत धर्म्मकी वैश्णवी दीक्षाका उल्लेख पाया जाता है (१५० बी० सी०)। इसी प्रकार मिलिन्द प्रश्नमे ४९ मिलिन्दके बौद्ध धर्म्म ग्रहणका उल्लेख पाया जाता है। बौद्ध धर्म्म और बौद्धसंस्कृति से शिक्षित यूनान शिल्प, बौद्धधर्म्म और बौद्धपुराणोंको शिल्पमें चित्रित कर एशियाके शिल्पमें अपना प्राधान्यसदाके लिये अंकित कर गया है।

देः डाः नाग-भारतीय मूर्ति विद्या मर्डन रिभ्यू" जनवरी१९२२)

इसी प्रकार अनेक राष्ट्रीय परिवर्त्तन जय पराजयके मध्य होकर भारतवर्षने, बाहुबल और पशुशक्तिके शस्त्रोंको मानवजाति की उन्नतिके साधन,कला,साहित्य,दर्शन और धर्म्ममें रूपान्तरित कर दिया। भारतके पश्चिम सीमान्तमें आदियुगसे आरम्भ कर कितनीही नई नई जातियां, कई प्रकारके नये धर्म्म कितनीही नई साधनायें भारतके उन्मुक्त तोरणको अतिक्रम कर आ पहुंची। भारतवर्ष ने भी अपनी मिलन यज्ञशालाका द्वार उन्मुक्त कर सभीका स्वागत किया। भारतवर्षनेघोषणकी कि बिजित और विजेता—ऐसी राजनैतिक परिभाषायें भ्रमात्मक हैं जातीय प्रेम, परस्पर मानवजातिका मिलन ही, सत्य और शास्वत है।

पर कुछही समय बाद एक ऐसा समय आया कि जब मैत्री और प्रेमके आधार पर जातीय मिलनकी समस्यायें अत्यन्त कठिन हो उठीं। इस हजार वर्षके प्रथमार्द्धमें मौर्य्य सम्राटके समय जब ईरान और यूनान इन दोनों जातियोंका मिलन भारतभूमि पर हुआ था उस समय उनके मिलनमें कोई नवीन अन्तराय उपस्थित नहीं हुआ, परन्तु इसके बाद मध्यएशियाको छोड़कर जब तुषाराक्रान्त हिमालयके उत्तुङ्ग गिरिशृङ्गोंको अतिक्रमकर म्लेच्छ और असभ्य जातियां देशमें आ धमकीं और उन जातियोंने भारतकी समस्त सभ्यता, संस्कृति और साधनाओं को उन्मूलन करना चाहा,तब ऐसे उस मानव समाजको भारतवर्ष

अपनेमें कैसे ग्रहण कर सकता है—यह एक कठिन समस्या देश के सन्मुख खड़ी हो गयी। प्रश्न उठने लगे कि जैसे सभ्य यूनान और ईरानके लिये भारतवर्षने अपनी बांह पसार दी थी, क्या इन जातियोंके लिये भी वहीं स्थान दिया जा सकेगा? क्या इनके लिये भी भारतके धर्म्ममन्दिरका तोरण द्वार उन्मुक्त रहेगा? इन प्रश्नोंके उत्तरमें भारतवर्ष अपने चिरपरिचित धर्म्मको भूल न सका, विश्वमैत्रीके राष्ट्र जीवनको जिस भारतने एक बार स्वीकारकर लिया है क्या वह कभी उसे भूल सकता है? भारतने अपनी यज्ञशालाका द्वार खोलकर उनका स्वागत किया हिमालयका गिरिद्वार उल्लंघन कर असभ्य, वर्बर, शक, कुशान, हूण और किरातोंके दलके दलने भारतकी सीमामें प्रवेश किया, भारतकी सभ्यताने इन्हें भी बाहुपसार कर प्रेमालिंगन करनेमें संकोच न किया। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्षके इस वृहत समाज जीवनमें जो संकीर्णता छिपी हुई थी उसने इस यथेच्छ मिलनके विरुद्ध विद्रोह घोषणाकी और उस विद्रोहने सामाजिक नीति और सामाजिक बहिष्कारके रूपमें दर्शन दिया। धर्म्मसूत्रकी सहज और सरल नीतिको, इन्होंने मिलकर अत्यन्त कूट और जटिल आचारमें रूपान्तरितकर दिया और इसी प्रकार मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु और नारद की विशालस्मृति साहित्यके रूपमें प्रगट हो गई—म्लेच्छ और असभ्योंकी इस समस्या का सहज समाधान यही माना गया। जातीय इतिहासने आज पर्य्यन्त न कभी समाज दण्ड और न कभी पुरोहितोंका शासन

ही स्वीकार किया। सारी शास्त्र आज्ञायें और राजादेशकी चिंता न कर न जाने परस्पर आदान प्रदान वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ करते हैं, इसका आज पर्य्यन्त कोई पता न लगा सका। इसी प्रकार यह चातुर्वण्य प्रथा केवल पोथी और पुस्तकोंमें ही लिखी रह गयी, वास्तविक जातीय जीवनको अपनी परिधिमें बांध कर न रख सकी। विद्वद्वर सेना (Senart) ने इसीलिये लिखा है कि "भारतके सामाजिक इतिहासमें वर्णाश्रम धर्म्म केवल एक मत-वाद मात्र था।" इसीलिये म्लेच्छराज रुद्रदामन५० और ऋषभदा-त५१ ने चातुवर्ण्य समाजके नेता और रक्षक रूपसे आत्म परिचय दिया है। आचार्य्य देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर आदि पण्डितोंने कई शिलालिपियोंमेंसे इस घटनाको निस्सन्दिग्ध प्रमाणित कर दिया है।

(देः इंडियन एन्टीक्वेरी—हिन्दुओंमें विदेशी अवयव—डा० भण्डारकर)

भारतवर्ष के हृदयपर इस आकस्मिक म्लेच्छोंकी चढ़ाई और बाहरसे विजातीय जनश्रोत केप्लावनने भारतीय समाज जीवनमें एक विराट वर्णशंकरता उत्पन्न कर भारतीय सभ्यतामें एक हलचल उपस्थित कर दी। भारतवर्ष इस विपत्तिसे अपनी सभ्यता द्वारा विजातीय नवागन्तुक म्लेच्छोंको अपनेमें मिलाकर ही उन्मुक्त हो सका। भारतके इस कार्य्यसे यद्यपि धार्मिक और सामाजिक जीवनमें एक वार कुछ शिथिलता दिखाई देने लगी तौभी देश की संस्कृति और सभ्यताके क्षेत्रमें एक

बड़ा लाभ हुआ। भारतका सभ्यताको नवागन्तुकोंने शीघ्र ही अपनी सभ्यता कह स्वीकार किया। भारतवर्षने यूनानियों और यवनोंको भागवत धर्मके भक्ति मार्गमें दीक्षित कर अपनी विजय घोषणा की। भारतवर्षने विदेशीय हिन्दू धर्म्मके शरणागतोंको भगवद्गीताके दार्शनिक कविके मधुर कण्ठका आह्वान सुनाया—

"सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

'सब धर्मको तू छोड़ कर बस मेरी ही शरण आ' और उसी समय जब जुडिया५२ के स्वर्गीय महापुरुष मनुष्य जातिके पापोंके प्रायश्चित स्वरूप अपने जीवनोत्सर्ग द्वारा यूनानरोमन संसार की नष्टप्राय सभ्यताको लज्जित कर रहे थे, भारतवर्षने भी अपनी वैयक्तिक मुक्तिके क्षुद्र आदर्श हीन-यान५३ को परित्यागकर विश्वमुक्तिके महान आदर्श माहायान५४ कोसर्व्व-श्रेष्ठ धर्म्मरूपसे स्वीकार किया। इस महायानके प्रधान नायक मैत्री मंत्रके उद्गाता "बुद्धचरित" के रचयिता कवि अश्वघोषने५५अपने "श्रद्धोत्पाद" शास्त्रमें जो कि भारतीय अन्तर्राष्ट्रीयताके इतिहासमें एक अनुपम रचना है सर्व्व संत्वके कल्याण और मुक्ति को व्यक्तिगत जीवनका सर्व्वश्रेष्ठ धर्म्मरूप से प्रचार किया। यह रचना उस कविवरके कण्ठसे निकली थी कि जिसे वर्बरविजयी कनिष्क युद्धलब्ध मणिरत्नोंके साथ ले गए थे। उस महाकवि अश्वघोषने जिनकी जन्मभूमि पराजित लाञ्छित और विजेता द्वारा लुण्ठित हो चुकी थी उन्हींके सन्मुख खड़े होकर अपने मुंहसे उनके अमंगलका एक अक्षर

भी उच्चारण न किया और न अपनी मुक्तिके लिये ही भिक्षा मांगी। प्रत्युत सारी संकीर्णता और क्षुद्रताको पदाघात कर विश्वकल्याण और विश्वमुक्तिको ही एक मात्र धर्म्म रूपसे प्रचार करना प्रारम्भ किया। कविवरने दिखाया कि भारत वर्ष विजेताओंको कैसे पराजित कर सकता है और उन्होंने यह भी दिखाया कि भारतवर्ष आज अपनेको विश्व मैत्री और विश्वहित कामनासे ही बड़ा बना सका है और इसी-लिये भारतके लिये बृहत्तर भारतकी सृष्टि सम्भव हो सकी थी, भारत का इतिहास इसीलिये बिश्वभारतका इतिहास कहलाया, यही बृहत्तरभारतका ऐतिहासिक क्रमविकाश प्राच्य खंड में किस रूपसे प्रस्फुटित हुआ था आगे हम उसीके उल्लेख का प्रयत्न करेंगे।

—:—

भारतमैत्री महामण्डल।

कविवर अश्वघोषने अपने "श्रद्धोत्पाद" शास्त्रमें सर्व्वसत्वके कल्याण और मुक्तिको व्यक्तिगत जीवनके सर्व्वश्रेष्ठ धर्म्म रूपसे घोषणाकी थी, भारतवर्षने अपने सामाजिक, धार्म्मिक और राष्ट्रीय जीवनमें इसी आदर्शको अपना परमध्येय स्वीकार किया था। महामानवताके इस परम आदर्शने जिस दिन जातीय जीवनको अनुप्राणित किया उसी दिन देश और जाति अपनी परिधिमें आबद्ध न रह सकी। देश और जातिकी शक्ति, समृद्धि, सौन्दर्य्य और साधना, त्याग और प्रेम, मानो

सीमोल्लंघन कर विश्वब्रह्मांडको आलिंगन कर रहा है। महान आत्मदान और इस आत्मविकाशके फलस्वरूप ही भारत एक दिन सारे प्राच्य खण्डको लेकर एक अपूर्व्व मैत्रीमहामण्डल की प्रतिष्ठा कर सका था।

ईसवी सन के प्रारम्भ होते ही भारतवर्ष बृहत्तर भारतके रंगमञ्च पर विश्वमैत्रीका रूप धारण कर अवतीर्ण हुआ था। भारत केवल अपनी तत्वविद्या और ध्यानलब्ध वाणीको ही प्रचार कर शान्त नहीं हुआ और न केवल किसी सार्व्वभौम नरपतिके उत्साह और सहयोगसे धर्म्मप्रचारकर ही शान्त हुआ, वरन वह एक दैवीप्रेरणासे अनुप्राणित होकर परम रहस्यमय आवेश और आनन्दमें उन्मत्त होकर सारे सांसारिक अहंकार को विसर्ज्जन कर विश्वमैत्रीके गम्भीर समुद्रमें कूद पड़ा। साधना और सभ्यताके इस विकाशने, धर्म्मविजयके इस प्रसारने एक ओर नेपाल और तिब्बतसे प्रारम्भ कर चीन, कोरिया, जापान और दूसरी ओर ब्रह्मदेशसे प्रारम्भ कर श्याम चम्पा, काम्बोज, यवद्वीप, मलाया, आदि सारे प्रदेशोंको भारतके साथ मिलन सूत्रमें बान्धकर बृहत्तर भारतके रूपमें परिचय दिया। भारतके इस अपूर्व धर्म्मविजयका इतिहास आज पर्य्यान्त लिखा नहीं गया।* मानव इतिहासके विश्वप्रेमकी धाराका जिन्हें अनुसरण करना है उनके लिये भारतके इस मैत्री साम्राज्यके इस अध्यायकी अवहेलना करना असम्भव है। इस अज्ञात और विस्तृत इतिहासको कोई महापुरुष आज नहीं तो कल

अवश्य प्रकाशमें लायेंगे ।

मानव जातिके सैद्धांतिक आदान प्रदान और परस्पर मिलनके इस उदार आदर्शने बौद्ध, जरस्तु, लावट्से, कनफ्यूसियस मनीकियन और ईसाई आदि धर्म्मोंके बीच जो अपूर्व मिलन कराया उसके विस्तृत इतिहासका पुनरुद्धार इन सारी जातियोंके सम्मिलित प्रयत्न पर निर्भर है ।

रिचर्ड गार्बे और भिनसन्ट स्मिथ इस बातकी साक्षी हैं कि ईसाई धर्म्मके प्रथम विकाशकी अबस्थामें बौद्ध धर्म्मने उसपर अपना कितना प्रभाव जमाया था और पीछेसे उसी ईसाई धर्म्मने हिन्दू-धर्म्मके कई आचार और व्यवहारोंको रूपान्तरित कर अपना लिया था । मेमफिसमें ५६ भारतीय नर नारियोंकी प्रतिमा आविष्कृत होनेके बाद मिसरके पुरातत्ववेत्ता फ्लिन्डर पेट्रीने कहा था कि भूमध्यसागरके किनारे भारतीय सभ्यताका यह सबसे प्राचीन निदर्शन है । सीरिया और मिसरके साथ भारतके सम्बन्धकी बात, यूनानमें अशोकके धर्म्मप्रचारकोंके भेजनेकी बात जो इतने दिनसे सुनी जारही थी उसका वास्तविक निदर्शन आजतक कोई नहीं मिला था, पर अब मेमफिसमें भारतीय उपनिवेशके वास्तबिक चिन्ह जो आविष्कृत हो रहे हैं उनसे आशा होती है कि भविष्यमें प्राच्य और पाश्चात्यके सम्बन्ध विषयक और भी नवीन तत्वोंका आविष्कार सम्भव है ।

गान्धारसे खोटान और मध्यएशियासे चीन ।

भारतवर्षके महायानने जितना परिवर्त्तन पाश्चात्य प्रदेशमें किया उससे कहीं अधिक परिवर्त्तन उस सुविस्तीर्ण प्राच्य महादेशोंमें किया । इतिहासज्ञ एरियनने "इन्डिका" में लिखा है कि "भारतवर्षके किसी भी सम्राटने साधारणतया भारतके बाहर दूसरे राज्यों पर विजयकी चेष्टा नहीं की, न्यायपरायण बुद्धि सदा ही उन्हें उस विजय चेष्टासे अनिवृत्त रखा करती थी । भारतवर्ष महायान पथावलम्बी हो रहा था, यही कारण है कि भारतवर्ष राज्यविजय और दिग्विजयके प्रलोभनसे उत्साहित नहीं हुआ, जब हुआ तो केवल धर्म्मविजयकी घोषणा पर ही उत्साहित हुआ । थेरवादके५७ संकीर्ण वैयक्तिक सिद्धान्तोंको छोड़कर विस्तृत और सत्यके आधार पर अवलम्बित "सर्वास्ति-वाद"के तत्वोंको कात्यायनी पुत्र अश्वघोषके गुरूने विभाषा और महाविभाषा नामक दो ग्रन्थोंका प्रणयन किया । सर्वास्तिवादका वैभाषिक सम्प्रदाय भारतके पश्चिम सीमान्त काश्मीर और गान्धार में अत्यन्त प्रबल हो उठा था और यहींसे उदयान५८ काशगर ५९ खोटान६०पारस्य प्रभृति देशोंके भीतर होकर इस सम्प्रदायने चीनमें अपनी ध्वजा फहरायी । इसी समय चीनका जातीय हृदय भारत और भारतीय साधनाओंसे चञ्चल हो उठा था । कहा जाता है कि ईसाके २१७ वर्ष पूर्व सम्राट सिनशिह हुआंगती ६१ के राज्यकालमें १८ बौद्ध भिक्षु बुलाये गए थे और यह बात भी निस्सन्देह प्रमाणित हो चुकी है कि ईसाके १२८--११५ वर्ष पूर्व

चंगकियन नामक एक व्यक्तिने चीनके दुर्गम पश्चिम सीमान्त पर रहनेवाली बर्बर जाति हियंगनू के निवास स्थानमें प्रवेशकर ता-हिया (बैकट्रिया) और शेन-तू (सिन्धु-हिन्दू) इन दो प्रदेशोंकी विशेष विज्ञप्ति चीन सम्राटको भेंट की थी।

इधर मध्य एशियासे ईसायुगके प्रारम्भ होते ही दलके दल बौद्ध भिक्षु, धर्म्मग्रन्थ, मूर्ति, और पताका आदि लेकर युचींई२राज दूत चीन राज सभामें जा पहुंचे। इससे पहले मध्य एशिया में बौद्ध धर्म अंकुरित हो उठा था। ईसवी सन् ६२ में सम्राट मिंगटीके राजत्व कालमें बौद्ध धर्म्मने चीनमें गौरव और प्रतिष्ठा लाभ की। धर्म्मके साथ साथ केवल धर्म्म ग्रन्थ ही चीनमें नहीं गए वरन बौद्ध शिल्प, बौद्ध मूर्ति और काश्यपमातंग और धर्म्मरत्नई३ ये दो बौद्ध भिक्षु भी बौद्ध धर्म्मके अग्रदूत रूपसे जा पहुंचे। कुछ ही दिनोंमें होनन प्रदेश की राजधानी लोयांगमें पाइमाई४ नामक एक विशाल बौद्ध मन्दिर बन गया और काश्यप-मातंगने भगवान बुद्धके बयालिस उपदेशोंको सर्व्व प्रथम चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा बहुतसे ताओ और कनफ्यूसियस धर्म्मावलम्बियोंने बौद्ध धर्म्म की दीक्षा ग्रहण की।

—:—

अश्वघोष और नागार्जुन ।

इसी समय भारतवर्षमें विशाल कुशान साम्राज्यका बीजा-रोपण हुआ। मध्य एशिया की यह दुर्दान्त और बर्बर जातिने थोड़े ही दिनोंमें भारतकी साधना और सभ्यताको नत मस्तक कर

अपनाया। इस कुशान साम्राज्यके सर्व्व प्रधान अधिष्ठाता महाराज कनिष्क (ई० स १२०) थे। इन्हीं महाराज कनिष्ककी श्वेतछत्र छायाके नीचे गान्धारके शिल्पने उन्नतिकी थी, इन्हीं की राजसभाको प्रातः स्मरणीय नागार्जुन६५ सुशोभित किया करते थे। नागार्जुन जैसे ही रसायन विद्यामें पारगामी थे वैसे ही अश्वघोष प्रवर्तित महायान तत्वके परम प्रचारक भी थे। सम्राट कनिष्कके समय पुरुषपुर (पेशावर) तक्षशिला प्रभृति शिल्प, विज्ञान और तत्वविद्याओंके केन्द्र हो उठे थे। एक ओर आयुर्वेदाचार्य्य चरक दूसरी ओर तत्वविद्याविशारद कात्यायनी पुत्र, और उधर संगीत कविकुल शिरोमणि अश्वघोष।

—:—

चम्पा, काम्बोज, सुमात्रा और यवद्वीप।

भारतवर्षने अपने धर्म्मदूतोंको प्रचारार्थ केवल स्थल मार्गों से ही नहीं भेजा। उसी समयके लगभग हिपेलास नामक एक यूनानीने समुद्रमें किस ऋतुमें कैसी हवा चला करती है तथा तूफान कब आया करता है—इन सब बातोंका आविष्कार कर समुद्र यात्राको सुगम बना दिया। किसी अज्ञात समुद्रयात्री द्वारा लिखित पेरिप्लस आफ दी इरीथ्रियन सी ६६ (Periplus of the Erythrean Sea) नामक अमूल्य ग्रन्थसे भारतवर्ष और मलाया प्रायद्वीपसे होकर अफरीका के मध्यसे सुदूर चीन तकके अन्तर्जातीय इतिहासका पता लगता है। व्यापार

साहसी भारतीय नाविकोंने भारतकी सभ्यता और साधनाके नवीन नवीन उपनिवेशोंकी, कई समुद्रोंको उल्लंघन कर इन्डो चीन अन्तर्गत चम्पा, काम्बोज, सुमात्रा तथा जावा पर्य्यन्त स्थापनाकी थी।

टालेमीने सन १५० में जो भूगोल लिखा है उसमें भी जावाद्वीपका उल्लेख भारतीय नाम यवद्वीपसे पाया जाता है। फरासिसी विद्वान पेलियोने लिखा है कि ईसाकी तीसरी सदी में फ्युनान अर्थात प्राचीन काम्बोज में भारतीय सभ्यताके स्पष्ट निदर्शन और समुद्र पारापारके कई उल्लेख दिखाई देते हैं। धार्म्मिक और तात्विक ग्रन्थोंके साथ साथ भारतीय उपाख्यान, साहित्य, गाथा और काहिनी तथा इसीके साथ शिल्पधारा भी पहले हीसे समुद्र अतिक्रम कर चम्पा, काम्बोज, सुमात्रा और जावामें प्रवेश कर चुकी थी। इसीके कुछ ही दिन बाद चीनने उसी समुद्र मार्गसे भारतके साथ वाणिज्य सम्बन्ध स्थापन किया था। पश्चिममें भारतवर्ष जैसे वाणिज्य समृद्धि प्राप्त कर रहा था उसी प्रकार पूर्व्वमें भी भारत अपनी अतुलनीय साधना और सभ्यताका विस्तारकर रहा था। विश्वसभ्यता के क्षेत्रमें इसीलिये बैकेरिया (कोट्टपम का बन्दर, ट्रावन्कोर) भरुकच्छ (भड़ोच) विदिशा(भिलसा मालवा)तथा बैशाली,(बसाढ़-मुजफ्फरपुर-तिरहुत) ताम्रपर्णी (सिंहल-सीलोन) तथा ताम्रलिप्ति (तामलुक बंगाल)आदि वाणिज्य प्रधान बन्दरोंके महत्वपूर्ण उल्लेख, जातीय कथा, गाथा जातकादिमें आज पर्य्यन्त पाये जाते हैं।

स्वतन्त्र व्यापारिक सम्बन्ध और आध्यात्मिक आदान द्वारा अन्तर्जातीयताकी इस अद्भुत उन्नतिके सामने राजनैतिक शासन और जातीय साम्राज्योंका उत्थान और पतन बहुत कम महत्वका जान पड़ता है। जातिका राष्ट्रीय इतिहास जातीय जीवनके निर्माणमें प्रधान भाग रखा करता था और उसका उत्थान तथा पतन अप्रत्यक्षरूपसे अराजनैतिक कारणों द्वारा हुआ करता था। इसीलिये एक ओर जब भारतवर्षमें कुशान और चीनमें हैन साम्राज्यका पतन होरहा था (२२५ ईसवी) दूसरी ओर ईरानमें (२२६ ई०) ससेनियन और भारतमें गुप्त साम्राज्यकी प्रतिष्ठा होरही थी (३०० ई०) ठीक उसी समय इस उत्थान और पतनके साथ साथ अन्तर्जातीय वाणिज्य और सभ्यताके आदान प्रदानके भीतर होकर भिन्न भिन्न जातियोंने भाव कर्म्म और प्रेम द्वारा मिलनका मार्ग सुगम कर लिया था और सारी राष्ट्रीय विपत्तिको अतिक्रम कर मिलित जातीय जीवन विश्वानुभूतिके प्रकाशमें परिस्फुटित किया था। इसीलिये पाया जाता है कि, जब भारतवर्षके मर्मस्थल पर असभ्य हूण उपद्रव करनेका उपक्रम कर रहे थे उसी समय भारतवर्ष अपने कुमारजीव और गुणवर्म्मनको मैत्री धर्म्म प्रचारके लिये चीन भेज रहा है और उधर चीनसे तीर्थयात्री मुमुक्षुओंका समूह, फाहियान, चीमांग और फामांग भारतवर्षमें आकर धर्मामृत पानकर अपनी धार्मिक और सैद्धांतिक तृष्णामिटा रहे हैं। विश्वप्रेम

और विश्वमैत्रीके प्लावनमें भौगोलिक और वर्णभेदके छोटे छोटे स्वार्थ बह गए। सारी संकीर्णताओंकी सीमा उल्लंघन कर भारतवर्षने अपने विशाल स्वरूपको पहिचाना। भारतवर्षने हिमालयके उत्तुंग शृंगोंके निषेधकी अवहेलना कर अनेक अपरिचित देशोंसे अपरिचित मानव क्षेत्रमें विहार करना सीखा। इसीलिये विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्न मुकुटमणि कविवर कालिदास अपने विरही यक्ष "मेघदूत" को अपनी विरहिणी प्रिया को खोजमें हिमालयके दूसरी ओर भेज रहे हैं। इसे क्या कविकल्पनाका स्वेच्छाविहार अथवा भारतवर्षकी आत्माका विश्वतोमुखी अमृतमय रूप कहा जाय!

तृतीय प्रकरण ।

तीसरे हजारवर्षका सिंहावलोकन

(ई० स० ५०० से १५०० ए० डी०)

भारत एशियाटिक परोपकारशीलताका केन्द्र

कविश्रेष्ठ कालिदासके मेघदूतमें विरहिणी यक्षप्रियाको जो सन्देश भेजा गया है वह भारतका हिमालयके पार—बृहत्तर भारत को उद्देश्य कर सन्देशकी प्रतिभाका एक निदर्शन है। जीवनको पूर्णरूपसे उपभोग करनेके लिये हा भारतवर्ष एक वार अशोकयुगमें और दूसरी वार कनिष्कके समय अपनी भौगोलिक सीमा अतिक्रम कर बृहत्तर भारतका अंकुरारोपण करनेके लिये धावित हुआ था। इस तीसरी वार भारत अपनी साधना और सभ्यताके भंडारको समस्त एशियाकी प्रदक्षिण कर पूरित और सम्बर्धित करनेको वाहर निकला। कालिदास वराहमिहिर, गुणवर्मन बसुबन्धु, आर्य्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त, जो लोग इन नामोंकी गुणगरिमासे, परिचित हैं वेही लोग उस युगके भारतकी साधना और सभ्यताका वैशिष्ठ सरलता पूर्वक समझ सकेंगे। हमारे राष्ट्रीय इतिहास लेखक जातीय जीवनके इस प्रकाशमय युगमें किसी शासक अथवा राजवंशका प्रभाव यदि दिखाना चाहें तो उन्हें भारतवर्षमें, गुप्त और वर्धन राज्यवंश, चीनमें, वी अथवा ताङ्ग वंशकी ओर

निर्देश कर कहना होगा कि येही उस अपूर्व साधना और सभ्यताके नियामक थे। मध्य एशियाके भूगर्भसे जो सब निदर्शन पाये गए हैं उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इस साधना और सस्कृतिके मूलमें किसी राजा अथवा किसी प्रसिद्ध राजवंशका प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। इस साधना और संस्कृतिका अपूर्व विकाश साधारण जनता की प्रीतिके आदान प्रदानके भीतर होकर ही परिस्फुटित हुआ था। इस नवीन सभ्यताके नवयुगका मार्ग भारतवर्षसे धर्म्म और साहित्यिक ग्रन्थ और चीनसे रेशमके बहुमूल्य वस्त्रोंके आगमन और प्रत्यागमन ने परिस्कृत किया था। पुरातत्व वेत्ता क्लीमेन्टज और कैजोलफकी अध्यक्षतामें रूस, डयू ट्रू ईलडी रीन्स और पौल पेलियोकी अध्यक्षतामें फरासीस, डा हार्नले तथा सर आरेल स्टीन की अध्क्षतामें अंग्रेज, ग्रुनवीडल और भानलीकौककी अध्यक्षतामें जर्मन, तथा काउन्ट ओटैनी और टैकिबैनाकी अध्यक्षता में जापानी विद्वानोंने अपने अविश्रान्त परिश्रमसे मध्य एशियाके जो शिल्प और अन्यान्य ऐतिहासिक उपादानों का आविष्कार किया है जिस दिन हम लोग उनकी व्याख्या और अनुशीलन कर सकेंगे उसी दिन भारतीय साधना और संस्कृति का यथार्थ मूल्य निरूपण सम्भव हो सकेगा। इस समय जिस सभ्यताको हमलोग पृथक पृथक जातियोंकी ऐतिहासिक सम्पत्तिके रूपसे समझ रहे हैं उस समय वही सभ्यता किसी जातीय विशेष की नहीं वरन अनेक जातियोंकी

सम्मिलित और सभीके आदान प्रदानसे उत्पन्न हुई विश्व-ब्रह्माण्डकी सम्पत्तिरूपसे दिखाई देगी। उन विद्वानोंके परिश्रम के प्रति कृतज्ञ होते हुए हम जातियोंके पारस्परिक संस्कृतिके आदान प्रदानका एक संक्षिप्त विवरण आप लोगोंके सामने रखते हैं।

भारत और चीन

भिक्षु कुमारजीवके धर्म्म प्रचारके अन्तिम काल पर्य्यान्त (३४४—४१३) बौद्ध धर्म्म और भारतीय सभ्यता मध्य एशियाके भीतर होकर ही चीनमें पहुंच सकी थी। चीन देशीय प्राचीन बौद्ध धर्म्म ग्रन्थ जो पाये जाते है वे प्रायः सभी बौद्ध-धर्म्म दीक्षित यूची, पार्थिय, या सोगडीय विद्वानोंके रचित है। इस विषयमें चीनी बौद्ध विद्वानोंने इन्हींका सहारा लिया है ऐसा अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। चन्द्र-गर्भ सूत्र६७, सूर्य्य गर्भ सूत्र६८प्रभृति महायान धर्मग्रन्थ और महा मयूरी६९ पुस्तक अध्ययन करनेसे पता लगता है मानो भारत, ईरान, खोटान, चीन सबने मिल कर समस्त एशिया की भावसम्पत्तिको समृद्धिशाली बनाया था। भाषातत्व की आलोचना से भी यही निश्चित होता है कि यह सब ग्रन्थ पाली अथवा संस्कृत ग्रन्थोंके भाषान्तर नहीं हैं वरन् विभिन्न प्रदेशान्तर्गत साधारण जनसमूहकी प्राकृत प्रचलित भाषासे बने हुए हैं।

चीनपरिव्राजक फा-हियान

(सन् ३९९-४१४ ए० डी०)

—:-०-:—

फा-हियानके भारत आगमनके साथ चीन और भारतमें एक अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हुआ । धम्मपद७० और मिलिन्द पन्हो७१जैसे बौद्ध धर्म्मग्रन्थ संस्कृत और पालीसे चीन भाषामें अनुवादित होने लगे । प्रसिद्ध बुद्धघोषके गुरू आचार्य्य रेवतीके पाद-पद्ममें बैठकर पाटलिपुत्र राजधानीमें फाहियानने शिक्षा लाभकर यहांसे सिंहल यात्रा की और उसी समयसे सिंहल और भारतके बीच भावोंके आदान प्रदानका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ । उस समय सभ्यताकी लीलाभूमि भारतवर्षने मानों ज्ञानका दीपक जलाकर समस्त संसारकी मानव जातिको अपने इस प्रकाशोद्भासित आलोकमय प्रांगणमें आह्वान किया । इस आह्वानकी मधुर वीणाध्वनिसे सारी विपत्तियोंको अग्राह्य कर निर्जल तरुविहीन मरुभूमि अतिक्रम कर कुमारजीव और फा-हियान जैसे असंख्य ज्ञान प्रकाशोन्मत्त आत्माओंने समस्त भारतवर्षको आच्छादित कर दिया । तक्षशिला और पुरुषपुर (पेशावर) के समस्त शिक्षा केन्द्रोंमें परिभ्रमण कर पाटलिपुत्रमें तीन वर्ष और ताम्रलिप्ति (तामलुक) में दो वर्ष अध्ययन कर सिंहल और यव द्वीप (जावा) में कुछ दिन व्यतीत कर फा-हियान पुनः अपने देश चीन लौट गए ।

धर्म्मदूत कुमारजीव

(सन् ३४४-४१३ ए० डी०)

—:०:—

बौद्धभिक्षु कुमारजीवको, जिनका आदिम निवास-स्थान काराशहर७२ (कूचा) था एक चीन सेनापति बन्दी कर चीन लेगया। इस बन्दी बौद्ध भिक्षुने जो चीनके प्रति उपकार किया वह अनन्त कालतक पृथ्वीके इतिहासमें स्मरणीय रहेगा। उन्होंने दस वर्ष पर्य्यन्त चीनमें बौद्ध धर्म्म और तत्वके अनुशीलन और प्रचारमें अपनी सारी शक्ति उत्सर्ग कर दी थी और उनके कार्य्यमें चीनके प्रसिद्ध विद्वानोंने भी सहायता दी थी। उनके सम्पादित और अनुवादित बौद्धधर्म्मग्रन्थ आज चीन साहित्यमें मुकुटमणि रूपसे परिगणित होते हैं और उनका सद्धर्म्म पुण्डरीक७३ आज भी चीन भाषाका एक श्रेष्ठतम ग्रन्थ है। उन्हींकी प्रतिभा और एकाग्र साधनाके प्रभावसे उत्तर और दक्षिण चीनकी दो बौद्धधर्म्मकी विभिन्न शाखायें सम्मिलित हो सकीं थीं।

—

ध्यान सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता बुद्धभद्र।

लगभग इसी समय समुद्रमार्ग द्वारा बौद्धभिक्षु बुद्धभद्र भी चीन में आ पहुंचे, इनके पवित्र जीवन आत्मविश्वास और भक्तिने दक्षिण चीनवासियोंको मुग्ध कर दिया था। बुद्धभद्रने अपनी एकान्त तपस्या द्वारा चीनमें ध्यान सम्प्रदायकी सृष्टि

की। चीनके सुवृहत लूशान गिरिविहारके भिक्षु कवि और तत्ववेत्ताओंने मिलकर बुद्धभद्रके इस नवप्रतिष्ठित तत्वके प्रचारमें सहायता दी थी।

कुमार गुणवर्म्मन काश्मीरके धर्म्मप्रचारक और चित्रकार

कुमारजीव और बुद्धभद्र जब चीनमें भारतकी अपूर्व साधना और बौद्धधर्म्म के प्रचारमें व्यस्तथे उस समय काश्मीरके राजकुमार गुणवर्म्मन राज्यसिंहासनकी माया छोड़ भिक्षुभेष धारणकर धर्म्मप्रचारके लिये पर्य्यटनको निकल पड़े। सन् ४०० ईसवीमें उन्होंने सुदूर भारतके उत्तरप्रान्त काश्मीरसे दक्षिण प्रान्त सिंहलमें आकर बौद्धधर्म्मकी पताका फहराई, वहांसे यवद्वीप (जावा) आकर राजा और राजमाताको बौद्धधर्म्ममें दीक्षित किया। यवद्वीपसे सन् ४२४ ईसवीमें प्रस्थान कर समुद्र मार्गसे प्राचीन कैन्टन और वहांसे नानकिङ्ग पहुंचे। सर्वत्र ही उनकी पाण्डित्य-पूर्ण लेखनी और निपुण कलमने चित्रशिल्प प्रिय सहस्त्रों चीन निवासियोंके चित्तको मोहित कर दिया। नानकिंग में इन्हींके उत्साहसे सर्वप्रथम दो बौद्धविहारोंकी स्थापना हुई और चीनमें भी भिक्षुसंघकी स्थापना इन्होंने ही की। वहीं उनकी मृत्युके बाद सिंहलसे तिस्सर? को अग्रणी बनाकर भिक्षुनियोंका दल बनाकर चीनमें भिक्षुनी संघस्थापन किया। प्रतीत होता है कि इस युगमें सिंहल और यवद्वीप (जावा) के मध्यसे भारत और चीनने एक अति निकट सम्बन्ध स्थापित

किया था । जापानके पुरातत्ववेत्ता पण्डित ताकाकुशू यह भी कहते हैं कि भिक्षु बुद्धघोष भारतसे सिंहल होकर चीन गये थे । इसीलिए काश्यपमातङ्ग अश्वघोष,नागार्जुन वसुबन्धु प्रभृति चौबीस भारतीय धर्म्माचार्य्योंकी जीवनी लिपिबद्ध कर चीनने सदाके लिए भारतवर्षके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञताका परिचय दिया है। सौभाग्यकी बात है कि हम लोगोंको भी कई प्रसिद्ध आचार्य्योंके नाम मिल रहे हैं, न मालूम और कितने ऐसे महत्वपूर्ण नाम आज भी विस्मृतिके निबिड़ अन्धकारमें छिपे हुए हैं । विदूद्दर शाभाँ और सिलभाँ लेभीकी कृपासे हम लोग इन विस्मृत महापुरुषोंके नाम जान सके हैं । इनमेंसे चीमाङ्ग और फामांग चीनसे भारतवर्षमें आए थे तथा सांघसेन और गुणवृद्धि भारतवर्षसे सन् ४६२ ईसवीमें चीन गए थे।

मौनधर्म्म—प्रचारक बोधीधर्म्म

भारत और चीनका सम्बन्ध मालय द्वीपपुञ्ज होकर छठी सदीमें बराबर बढ़ रहा था, इस सम्बन्धका मुख्य श्रेय बोधीधर्मको ही है । सन् ५२० ईसवीमें उन्होंने दक्षिण चीनमें जहां बुद्धभद्रने प्रेम और साधनाके द्वारा लोगोंका चित्त आकृष्ट किया था वहीं आकर नौ वर्ष पर्य्यन्त मौन तपस्या की । यद्यपि इन नौ वर्षोंमें इस महापुरुषने निर्वाक तपस्या की तथापि उन्होंने चीन-निवासियों पर एक अपूर्व प्रभाव जमा लिया था, उनकी साधनाके अपूर्व स्त्रोतसे एक दिन चीन और जापानमें भी मैत्री स्थापित हो सकी थी ।

योगाचार्य्य सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता परमार्थ

वोधीधर्म्मके बाद चीन की यात्रामें बसुबन्धु के चरित्र लेखक परमार्थका उल्लेख पाया जाता है (४२०-५००)। परमार्थ ई० ५४०में चीन पहुंचे और आठ वर्ष बाद (५४८) नानकिङ्ग-निवासियोंने उन्हें बड़े सन्मान पूर्वक आमंत्रित किया। इन्होंने केवल असंग७४ और वसुबन्धु७५की ग्रन्थावलियोंका ही अनुवाद नहीं किया वरन ह्यूवेनसांगके पूर्व योगाचार्य्य तत्व और योगाचार्य्य सम्प्रदायका सर्वप्रथम प्रचार चीनमें किया।

चीन और भारतका मैत्री युग

ताङ्गवंशीय७६ राजाओंके अविश्रान्त परिश्रमसे (६१७-६१०) उत्तर और दक्षिण चीन सम्मिलित होगया और मध्यएशिया में पुनः चीनका प्रभुत्व स्थापित हुआ। इसीके साथ साथ चीन और भारतके मैत्री बन्धनसे एशियामें शिल्प साहित्य और तत्व-विद्याका एक गौरवमय युग प्रारम्भ हुआ। ह्यूवेन्तसांग और और इचिंगके भ्रमण वृत्तान्तसे पता चलता है कि इस युगमें भारतवर्ष ही एशियाकी साधना और बौध धर्म्मका केन्द्र होचुका था। यद्यपि बीच २ में चारोंही ओरसे भारतीय साधक मण्डली पर आक्रमण होरहा था तौभी चीनकी साधना और सभ्यताके विकाशके प्रत्येक स्तरमें भारतीय शिल्प साहित्य और भावनाकी धारायें इतनी स्पष्ट परिस्फुटित होरही हैं कि किसी भी प्रकार उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। भारतीय

बौद्ध साहित्यका अनुवाद आज भी चीन भाषा और साहित्यका अमूल्य रत्न गिना जाता है। बौद्ध तत्व और धर्म्मने किस रूपसें मध्यएशियाके हृदय पर यूनानी, ईरानी, क्रिश्चियन और मैनिकियन सभ्यताके प्रवाहको रूपान्तरित किया था उसका यथेष्ट प्रमाण नवाविष्कृत मध्यएशियाके चित्र और तक्षण शिल्प में पाया जाता है। भारतका शिल्प, रूप, रीति, और आभास, भारतका आदर्श, चिन्ता, साहित्य कल्पना तथा भारतवर्षसे जो कुछ आया वहीं कल्याणकर और वही ग्राह्य है—यही उस समय के चीनके विचार थे। इसीलिये तुएङ्हांग७७की चित्रावलीमें चीन और भारतके शिल्प रूपका एक अपूर्व्व सानिध्य दिखाई देता है। इन दो सभ्यताओंकी शिलपविकाश धाराने ही पीछे जापानमें प्रवेश किया था। इसीलिये आज दुर्गम मरु भूमिके वक्षस्थल पर जिस शिल्प भण्डारका आविष्कार हुआ है उसने विश्व-सभ्यताके इतिहासमें एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है। चीन देशसे भूमध्यसागरके तीरवर्ती एशियाके ऊपरसे जो पथ चला गया है उसीके केन्द्रबिन्दुपर तुएङ्‌ हाङ्गका विस्तृत गिरिमंदिर वर्त्तमान हैं। उसीके पास होकर भारत और तिब्बतसे मंगोलिया जानेका मार्ग निकल गया है। इसी लिये ताङ्‌ युगकी बौद्धचित्रावली को देख कर राफल पेट्रूसी और लारेन्स बिनयन आदि विद्वानोंने कहाथा कि पृथ्वीके शिल्य इतिहासमें ताङ्‌ युगका शिलपविकाश एक अपूर्व्व अध्याय है।

भारत और कोरिया ।

चीनसे बौधधम्म और बौद्ध सभ्यता कोरिया सन् ३७४ पहुंची। उत्तर चीनसे दो आचार्य्य आताऊ और शन ताउ कोरिया राजधानी में आमंत्रित किये गए थे। उसीके दश वर्ष बाद बहुतसे भारतीय और चीन भिक्षु तथा मतनन्द नामक एक भारतीय बिद्वान मध्यकोरियाकी महासभा—पैक चाई में पहुंचे। ईसाकी पंचम शताब्दिके मध्य भाग में बौद्ध धम्मका प्रचार दक्षिण कोरिया पर्य्यन्त फैल चुका था और कृष्णविदेशी७८ नामक एक सन्यासीने "तृरत्न"७९का प्रचार किया था। ये वैद्यक विद्यामें भी बड़े निपुण थे और कोरियामें इन्होंने सिल्लराज्यकी राजकुमारीको एक कठिनतर रोगसे आरोग्य किया था और यही कारण है कि उन्हें धर्म्मप्रचारमें अच्छी सहायता मिली थी। ईसवी सन ५४०-५७६ के मध्य कोरियाके सम्राट और साम्राज्ञीके बौद्ध दीक्षा ग्रहण कर भिक्षु और भिक्षुणी वेश धारण करनेका उल्लेख कोरियाके इतिहासमें पाया जाता है। इनके उत्साह और प्रयत्नसे ई० ५५१ में कोरियामें एक बौद्धधर्म्म महामण्डलकी स्थापना हुई थी और कोरियाके एक राजपुरोहित उसके प्रधान धर्म्मनायक नियत किये गए थे। इसी समयसे आरम्भ कर दसवीं सदी पर्य्यन्त कोरियामें बौद्ध धर्म्म और बौद्ध सभ्यताने अपूर्व गौरव और गरिमा प्राप्त की थी। यही कारण है कि कोरिया आज भी बौद्ध पुरातत्ववेत्ताओंके लिए विस्तृत क्षेत्र समझा जाता है। सम्भव है कि एक

दिन, कोरिया, चीन, जापान आदिके पुरातत्ववेत्ता पण्डित ज्ञवरोंकी चेष्टासे कोरियामें बौद्धधर्म्म तत्वके अनेक ऐतिहासिक तत्वोंका उद्‌घाटन हो सकेगा ।

—:—

भारत और जापान

कोरिया एक छोटा और नगण्य देश होते हुए भी जापानमें बौद्धधर्म प्रचारके श्रेयका अधिकारी है । ईसवी पञ्चम शताब्दिके मध्य जापानमें चीनकी शिक्षा और सभ्यता पहुंच चुकी थी तौभी ई० सन् ५७८ में कोरियाने ही सर्वप्रथम एक बुद्धभगवान-की स्वर्णप्रतिमा कई धर्म्मग्रन्थ और कई सुन्दर चित्रित पताकायें जापानकी राजसभामें भेजकर जापानको मैत्री और बधाईके निदर्शन स्वरूप भेंट की थी । इसीके साथ साथ कोरियाने जापानको यह सत्य और मधुर उपदेश भी कहला भेजा था कि "बुद्धधर्म सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठधर्म है, जिसने इस धर्मको ग्रहण किया उसीका जीवन प्रेम और कल्याणसे परिपूर्ण हो गया (भारतवर्षसे कोरिया पर्य्यन्त सारे ही देशोंने इसे आलिंगन किया है" । जापान निवासी प्राचीन विचारके लोगोंने बुद्धधर्मकी इस प्रतिष्ठाके विरुद्ध विद्रोह घोषणा की और ये लोग जितने ही प्रबल होने लगे, जापानके नवीन बुद्धधर्मानुयायी इनके साथ उतने ही प्रबल होकर लड़ने लगे । ई० ५८७में विरोधियोंके पतनके साथ कुमार उमयद् वा शोतुक् (५९३-६२२) ने बौद्धधर्मको राष्ट्रधर्म कहकर ग्रहण और प्रचार किया था ।

जापानमें ज्योतिष और आयुर्वेदको शिक्षा देनेके लिये कोरियासे कई आचार्य बुलाए गये और कई जापानके विद्यार्थी चीन भेजे गये। बौद्धभिक्षु आचार्य्योंके साथ साथ कलाविद, शिल्पी और विश्वप्रेमी चिकित्सक भी सभ्यताकी ध्वजा फहराने जापान पहुंचे और यहां भी सर्व्वत्रकी तरह बौद्धधर्म्मने उपासकों के विश्वप्रेम तथा सुन्दरताकी भित्ति पर अपना प्रभाव जमाया और उसी समय जहां जहां नवीन धर्मकी प्रतिष्ठा हुई, वहीं आरोग्यशालायें, अतिथि भवन विद्यामन्दिर, विराट चित्रशालायें तथा मूर्तिशिल्पकी भी विशेष उन्नति हुईं। केवल भारतसे ही नहीं वरन चीनसे भी भिक्षु कानजिन (७५४-७६३) आरोग्यशाला तथा बनस्पतिशालाओंकी स्थापना करने आए। इस प्रकार भारतीय प्रचारक ब्राह्मणवंशोद्भव भारद्वाज गोत्रिय आचार्य बोधिसेन अपने चम्पा और चीनके शिष्यवर्गों सहित ई० ७३६ में जापान आए। इनके शिष्यवर्गोंमें कई प्रसिद्ध शिल्पी और गायक थे और इन्होंने अष्टम शताब्दिमें भारतीय वीणा और अन्यान्य वाद्ययन्त्रोंका प्रचार किया जिसका निदर्शन गान्धार रीतिके अनेक प्रस्तरचित्र के रूपमें आज भी जापानकी चित्रशालामें सुरक्षित हैं। आचार्य्य बोधिसेन ई०सन७६० पर्य्यान्त जापानमें प्रधान धर्म्माचार्य्यके पद पर प्रतिष्ठित थे और सदा "ब्राह्मणाचार्य्य" के नामसे प्रसिद्ध थे।

इन भारतीय औपनिवेशिकोंने अपने बाहुबल द्वारा राजनातक आधिपत्य स्थापन करनेका प्रयत्न नहीं किया और निस्वार्थ

भावसे कई शताब्दियों तक जापानके जातीय शिल्प साहित्य भण्डारको समृद्धिशाली बनाते रहे।

ईसाकी अष्टम शताब्दिका नारायुग८० जापानके लिये बड़ा ही गौरवमय है। इसी युगमें बौद्धधर्म और सभ्यता राजधानीको अतिक्रम कर जापानके आभ्यन्तरिक सारे प्रदेशोंमें फैल गई थी। सर्वत्र बुद्धधर्म संघकी प्रतिष्ठा और सारे देशमें बौद्धधर्मकी दीक्षाका प्रवाह उमड़ उठा। यही समय जापानके चित्र और मूर्ति शिल्पके गौरवमय विकाशका युग है, और चीनके साथ घनिष्टताका समय भी यही कहा जाता है। ईसाकी आठवीं शताब्दिमें चीनमें शुभकरसिंह८१ और अमोघवज्र८२ द्वारा प्रतिपादित मन्त्र सम्प्रदायका बीजारोपण जापानमें ईसाकी नवीं शताब्दिमें होरहा था उस समय चीन और भारतमें असंग प्रतिपादित धर्म्मलक्षण नामक गुह्यधर्म्ममार्ग लुप्तप्राय हो चला था। किन्तु वह मत उसी समय जापानके तत्वविद्या भण्डारका समृद्धि साधन कर रहा था। जापानके जातीय जीवनमें जो कुछ शैथिल्य आगया था वह बौद्धधर्म्म और सभ्यताकी वारिसिंचनसे नवीन शक्ति द्वारा अनुप्राणित हो उठा। इस प्रकार बौद्धधर्मके राष्ट्रधर्म होनेके दो सौ वर्षोंके भीतर ही जापान, धर्म्म और तत्वक्षेत्रमें स्वाधीन और स्वावलम्बी बन गया। कई विभिन्नमतवाद और सम्प्रदायोंकी सृष्टि होने लगी, जापानको अब एशिया (जम्बुद्वीप) के मुखापेक्षी रहनेकी आवश्यकता न रही। जापानी बौद्धधर्म्मके नामसे आज जो बोध होता है,

ईसाकी नौवीं शताब्दिमें सैचो और कोबो८३ उस धर्म्मके प्रधान संस्थापक थे। सैचोने तेन्डाइश् धर्म्म सम्प्रदायकी प्रतिष्ठाकी और एक मात्र बुद्धदेवको ही प्रेम और कल्याणका सर्व्वोत्तम विकाश और व्यक्तिगत जीवनमें बुद्धत्व प्राप्त करना ही सारे ज्ञान, भक्तिके रहस्यका एक मात्र ध्येय माना (७६७-८२२)। कोबोने शिंगनश् नामक और एक सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा (७७४-८३५) की—उन्होंने कहा कि—"सारा विश्व भगवान बुद्धदेव-का ही बहिर्विकाश है, वे सभीके अन्तर्यामी हैं, हम लोग यदि कायेन, मनसा, वाचा जीवनके गूढ़ रहस्योंका अनुशीलन करें तभी बुद्धदेवको जान सकते हैं।"

इन दो सम्प्रदायोंने जापानके उन्नतशील समाजमें अच्छा प्रभाव जमा लिया था, परन्तु अन्धसंस्कार पीड़ित जनसाधारण भी चुपचाप न बैठकर, नये नये सम्प्रदायोंकी उद्भावना और प्रतिष्ठामें लगे हुए थे। ईसाकी बारहवीं शताब्दिमें जापानपरसे एक भयानक धर्म्म विप्लवकी आंधी निकल गई और उसने समस्त जापानके धर्म्म विचारको ध्वंस कर दिया। जो तत्वचिन्ता धर्म्मका सर्वप्रधान अंगमानी जाती थी, जापानने उसीको अवज्ञा और अवहेलनाकी दृष्टिसे देखना प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि ई० स० ११३३-१२१२ में होरेन नामक एक व्यक्तिने जापानके धर्म्मक्षेत्रमें उपस्थित होकर "सुखावती" नामक एक नवीन सम्प्रदायकी स्थापना की—"कोई प्राणी कितना भी ज्ञानी वा अज्ञान, ऊंच वा नीच हो उसे मुक्ति अवश्व होगी

यदि उसे केवल मात्र "अमितभ" (बुद्धदेव) की असीम करुणामें विश्वास हो।"

बौद्धधर्म्मके विकाशके साथ जापानके प्राचीन शिन्तो धर्म्म८४ में भी परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया था और चिकफूसा जैसे विद्वान भी शिन्तोधर्म्मके विभिन्न देवताओंका बुद्धावतारके नामसे प्रचार करने लगे।

इधर ईसाकी तेरहवीं सदीके मध्य चीनसे बुद्धभद्र और बोधिधर्म्म प्रवर्त्तित वही ध्यान तत्व सम्प्रदाय जापानमें आ पहुंचा और जापानकी युद्ध जीवि समरजीवि जातिने इस सम्प्रदायको अपनाया। इसी प्रकार जब भारतवर्ष अपनी संकीर्ण गृह समस्याओंमें व्यस्त चित्त होकर अपने उस बृहत्तर कोरिया और जापानमें धार्म्मिक विस्तारके आदर्शको भूल रहा था उस समय जापानके मन्दिरों मन्दिरोंमें बड़े समारोहके साथ अमितभ बुद्धभगवानकी पूजा हुआ करती थी और भारतीय आचार्य्य पिंदोल भारद्वाज८५ की मूर्ति मन्दिर मन्दिरमें अंकित की जाती था।

भारत और तिब्बत

तिब्बत और अधिक दिन पर्य्यन्त भारतीय साधना और सभ्यतासे वञ्चित न रह सका। जिस दिन तिब्बत धर्म्मान्वेषण के लिये बाहर निकला उसी दिन एक ओर चीन और दूसरी ओर भारत इन दोनोंके मिलन सूत्रमें उसे आवद्ध हो जाना पड़ा। तिब्बताधिपति शृङ्ट्सन गम्पो ने Strong btsan Gampo

(६३०-६९८)नेपाल और चीन राजकुमारीका पाणिग्रहणकर सम्बन्ध को सुदृढ़ किया। नेपाल राजकुमारीने तिब्बतमें हिन्दू और बौद्ध धर्म मिश्रित तारा देवीकी पूजा प्रारम्भ की और दूसरी ओर चीन राज कन्या अपने साथ बौद्धधर्म और आचार्य्यों को ले आईं। गम्पो केवल इसीसे शान्त न हुए उन्होंने अपने मन्त्री थुम्भी सम्भोटको भारतमें विद्याध्ययनके लिये भेजा और इन्हीं सम्भोटने देवनागरी लिपिका रूपान्तर कर वर्त्तमान तिब्बती वर्णमाला की स्टृष्टि की। गम्पोके बाद खृसङ्डीब्लसन Khri strong de btsan७४०-७८६) ने भारतवर्षसे अनेक पण्डितोंको तिब्बत बुला भेजा और उनकी सहायतासे तिब्बतने अपने साहित्य और धर्म ग्रन्थ तैयार कराये। भारतीय पण्डित पद्म सम्भव८६ और उनके शिष्य पागुर बैरोचनका नाम तिब्बतके साहित्यिक इतिहासमें चिरस्मरणीय हो रहा है। भारतीय धर्म्मग्रन्थादिकोंका अनुवाद तिब्बतीय भाषा और साहित्य को सदाके लिये उन्नत बनाये रखेगा। ई० स० १०३८ में बंगाल देशसे अतीश दीपं-कार श्रीज्ञानने ८७ तिब्बतमें पहुंचकर तिब्बतके जातीय धार्म्मिक इतिहासमें एक नवीन अध्याय जोड़ दिया। परन्तु चीन जापानने जैसे बौद्धधर्म्म को अपना कर नये नये सम्प्रदाय उत्पन्न कर दिये थे तिब्बत उस प्रकार न कर सका। उनके काञ्जूर८८ और ताञ्जूर प्रभृति धर्म्मग्रन्थोंमें आज पर्य्यान्त भी इन्द्रजाल (जादू) जड़ विद्या और असम्भव गल्पोंका अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है। यद्यपि अमरकोष जैसे अभिधान,मेघदूत, जैसे काव्य

चन्द्रगोमिन८९ रचित व्याकरण और चित्रलक्षण प्रभृति ग्रन्थ तिब्बतियोंने अनुवाद किये थे तौभी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बौद्धधर्म्ममें जो भी कुछ वैचित्र्य है उसीमें तिब्बतियोंने अपने धर्म्मको ढूंढ निकाला था-इसी प्रकार वज्रयान९०, और काल चक्रयान की सृष्टि हुई और वही क्रमसे लामा धर्म्ममें परिणत हो गया। इसीसे पता लगता है कि तिब्बतमें बुद्ध की अपेक्षा नागार्जुन का सम्मान कहीं अधिक है।

कुछ ही दिनोंमें तिब्बतका पार्व्वतीय इन्द्रजाल, झाड़ फूंक मन्त्र भारतीय बौद्धधर्म्मके साथ मिल गया। मि० बैंडल बहुत दिनोंतक तिब्बतमें रहे और उन्होंने तिब्बतके इतिहासमें लिखा है कि तिब्बतियोंमें जो कुछ सभ्यता दिखाई देती है, जो कुछ मानव समाजमें उनकी उन्नति हुई है—वह सब बौद्धधर्म्म और बौद्ध सभ्यताकी कृपा है। पशु हत्या और रक्तपात को बन्द कर उनकी भूत पूजामें संशोधन कर विश्व प्रेम और जीवदयाका प्रचार कर असभ्यताको दूर करनेका श्रेय भी बौद्ध धर्म्मको ही है।

भारत तथा तुर्क मंगोलियन जन समूह।

मंगोलसेनापति चंगेज खां और कुब्ले खां द्वारा चीन और मध्य एशियाके विजयके बाद कुब्ले खांके तिब्बतीय राष्ट्र बन्धु लामा फाग्सपा९१ने सारे तिब्बतमें एक दैव तन्त्रकी प्रतिष्ठा की। इसी तिब्बतके भीतर होकर भारतीय शिल्प और मूर्ति निर्माणने (विशेष कर ताम्र मूर्ति कला) चीन, मध्य

एशिया और बौद्ध धर्म्मा दाक्षित मंगोलियाके सम्राटोंकी राज सभामें बहुत आदर पाया था। ई० १२८०में लामा फाग्सपा की मृत्युके बाद लामा धर्म्मपाल उनकी गद्दीपर बैठे। इनके उत्साह और छत्रछायामें तिब्बत मंगोल, तुङ्गस९२ और उइगुर९३ निवासी तुर्क एक धर्म्मबन्धनमें बन्ध कर भारतकी मैत्रीका सन्देश साइबेरिया पर्य्यान्त ले गए थे।

भारत और दक्षिण पूर्व्वीय एशिया

कोरिया जापान, चीन, तिब्बत छोड़ कर यदि दक्षिण की ओर आंख उठायी जाय तो दिखाई देगा ब्रह्मदेश—इसीके बाद स्याम कम्बोज, चम्पा, सुमात्रा, जवदीप, मदुरा, बालि और अन्तमें वर्त्तमान पौलिनिशिया९४ इन सब स्थानोंका इतिहास अगले दिन तक विस्मृतिके गर्भमें पड़ा हुआ था परन्तु फरासिसी और डच विद्वानोंकी चेष्टासे इस विस्तृत और अज्ञात इतिहासके एक विराट अध्यायका आविष्कार हुआ है। नित्य ही नवीन नवीन तत्वोंका उद्‌घाटन हो रहा है और यह अब असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो चुका है कि ईसाकी तेरहवीं और चौदहवीं सदा पर्य्यान्त भारतीय साधना और सभ्यताने अप्रतिहत धारासे दक्षिण पूर्व्वा एशिया इन भूखण्डोंको परिप्लावित कर दिया था।

हिन्दू सभ्यता विस्तार का क्रम।

दक्षिण पूर्व्वा एशियाके पुरातत्वविद सज्जनोंने जो कुछ खोज की है वह बहुत प्राचीन नहीं है। इसीलिये उन्नीसवीं सदाके विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते कि बहुत प्राचीन कालसे

भारतीय प्रभाव उस देशमें विस्तृत हो चुका था। परन्तु एक जाति दूसरी जातिका धार्म्मिक, व्यापारिक अथवा आर्थिक सम्बन्ध स्थापनके लिये पता लगा लिया करती है, यद्यपि उसके चिरस्थायी ऐतिहासिक प्रमाण मिलें या न मिलें। यह मैत्री बन्धन इसलिये रुका नहीं रहता कि किसी विशिष्ट राजाकी दिग्विजय गाथा शिलाओंपर लिखी जायं अथवा ताम्र शासन लिखे जायं अथवा किसी शिल्पी विशेषके विशालकीर्ति स्तम्भकी प्रतिष्ठा हो। इसलिये यह असम्भव नहीं कहा जा सकता कि जब भारतीय शिल्पी और धर्म्माचार्य्योंने स्थल मार्ग होकर मध्यएशिया और चीनमें प्रवेश किया था ठीक उसी समय जल मार्ग होकर दक्षिण पूर्व एशियाके भूखण्डोंमें भी उन्होंने अपनी सभ्यता और धर्म्मकी प्रतिष्ठा की हो।

ई० सन् १५० में टालेमीके भूगोलमें जवद्वीप पर्य्यन्त इधरके बहुतसे स्थानोंका नाम पाया जाता है। इसलिये सहज हीमें अनुमान किया जा सकता है कि इसके पहले भारतीय धर्म और संस्कृतिको फैलानेके उद्देशसे बहुतोंने इस ओर आना प्रारम्भ कर दिया था। चम्पामें जो प्राचीनतम शिलालिपिका आविष्कार हुआ है उसका समय ईस्वाकी तीसरी शताब्दि है और उसमें भारतीय प्रभाव (बौद्ध और ब्राह्मण) स्पष्टतर है। अध्यापक पेलियोकी धारणा है कि भारतसे पूर्व एशिया आनेमें मध्य एशियाके भीतर होकर जो प्राचीन मार्ग था वह तो थाही, उसके अतिरिक्त प्राचीन कालमें और भी दो मार्ग थे—एक आसाम

ब्रह्मदेश चीनके भीतर होकर स्थल मार्ग और दूसरा इण्डोचीन होकर समुद्र मार्ग। पेलियोको यह भी प्रमाण मिला हैं कि ईसा की तीसरी सदीके चीनके साहित्यमें काम्बोज के प्राचीन नाम फ्युनानका उल्लेख है। इसलिये यदि यह कहा जाय कि ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दिसे ही इधर बृहत्तर भारतका सूत्रपात हो गया था तो इसे कोई केवल अनुमान हैं यह कहकर अवहेलना नहीं कर सकता। दक्षिण पूर्व्वी एशिया में यही बृहत्तर भारतका प्रथम अध्याय है। ऐतिहासिक सामग्रियोंकी अपूर्णता और अबाहुल्यको ध्यानमें रखते हुए यह कहना पड़ता है कि ईसाकी पहली सदीके आरम्भमें हिन्दू धर्मका विस्तार प्रारम्भ हुआ और उस समयके निर्भ्रान्त प्रमाण पेगू, वर्म्मा, चम्पा, कम्बोज, सुमात्रा और जवद्वीप (जावा) में पाये जाते हैं।

इसके दूसरे अध्यायका प्रारम्भ ईसाकी पांचवी सदीसे होता है। यह पांचवी सदी भारतीय इतिहासका एक स्वर्णमय युग है। धन, जन और ज्ञानसे उस समय भारत परिपूर्ण, श्री और समृद्धिलाभ कर रहा था। इस युगके हिन्दू धर्म और संस्कृति ने काम्बोज और चम्पाको पूर्णरूपसे अनुप्राणित कर दिया था। मालय उपद्वीप, स्याम, लाओस, वोर्नियो सुमात्रा जवद्वीप(जावा) सर्व्वत्र ही हिन्दू उपनिवेशोंकी प्रतिष्ठा हुई, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म्म सर्व्वत्र साथ साथ लालित और वर्धित होने लगे। बृहत्तर भारत का यह गौरवमय अध्याय आज भी अज्ञात और अलिखित हैं।

यह पांचवींसदी वही भारतका गोरवमय युग है कि जब आचार्य आर्य्यभट्ट (ई०स०४७६) और बराहमिहिर (५०५-५८७) भारतीय विज्ञानको यूनानी विज्ञानके साथ समीकरण कर रहे थे जब प्रसिद्ध भिक्षु गुणवर्म्मान मृत्युशय्यापर (नैनकिन ४३१ ई०) जवद्वीपको बुद्धधर्म्मकी पवित्र दीक्षा दे रहे थे और दूसरा ओर प्रसिद्ध अजन्ताकी गिरिकन्दराओंमें आर्य्य-द्रविड़ और भारत-ईरानी सभ्यताके सम्मिश्रणका प्रभाव अंकित किया जा रहा था । हिन्दू जागृतिके इस महायुगमें जातिभेद और साम्प्रदायिक असहिष्णुता की गन्ध नहीं पाई जाती । अस्तु, इसीलिये हिन्दू और बौद्धधर्म्म जाति पांतिके भेद को छोड़ कर इस दक्षिण पूर्व्व एशिया में अक्षुण्ण गतिसे शान्तिपूर्वक प्रवाहित होरहा था । बृहत्तर भारतके इस प्रदेशमें भिन्न भिन्न धर्म्मों के एकीकरणका हिन्दू प्रयत्न और इस सभ्यतात्मक संयोगका इतिहास अभी लिखना बाकी है ।

—:—

सिंहल और बर्म्मा ।

भाषाकी दृष्टिसे ब्रह्मदेश और तिब्बतका सम्बन्ध निकटतर होते हुए भी संस्कृति और भावनाकी दृष्टिसे ब्रह्मदेशका सम्बन्ध भारतके साथ था । ईसाकी तीसरी सदीके पहले सम्राट धर्माशोकके धर्म्म प्रचारकों द्वारा बर्म्मामें बौद्धधर्म्मके प्रतिष्ठाकी बातमें कुछ ऐतिहासिक सत्य कम भी हो, परन्तु ई० स० ४५० में आचार्य्य बुद्धघोषने सिंहलसे (लंकासे)

ब्रह्मदेश पहुंच कर हीनयान बौद्धधर्मका प्रचार किया था—इस बातकी सत्यता अभ्रान्त स्वीकार करनी होगी। इसके अतिरिक्त चीनके पुरातत्व वेत्ताओंने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि भारतोद्भूत इस बौद्धधर्म्मके प्रचारमें बुद्धघोष ही केवल अग्रणी न थे उनके पहले भी महायान बौद्धधर्म्म और हिन्दूधर्म्मके प्रचारकोंने ब्रह्मदेशमें अपनी अपनी संस्कृतिका प्रचार किया था। ईसाकी पांचवीं सदीके जो समस्त प्यू शिलालेख आविष्कृत हुए हैं उनकी भाषासे भी यह बात प्रमाणित हो जाती है कि उक्त भाषा संस्कृत साहित्य भण्डारसे उस समयकी प्रचलित प्राकृतिक माध्यम द्वारा ली गई है। इसी प्राकृतका चलन उस समय पूर्वीय भारतमें था; परन्तु ग्रन्थोंकी भाषा पाली ही थी और इस पाली भाषाका प्रभाव उक्त शिलालेखों पर नहीं पाया जाता। इसलिये यह कहा जा सकता है कि महायान बौद्धधर्मने पूर्व बंगाल और आसामके भीतर होकर ब्रह्मदेशमें प्रवेश किया था। उसी दिनसे आज पर्य्यन्त सिंहलके सदृश ब्रह्मदेश भी धर्म्म और संस्कृतिमें भारतवर्षका ही एक प्रधान अंग समझा जाता है।

—:—

चम्पा, कम्बोज, श्याम और लाओस।

चम्पा और काम्बोजके हिन्दू उपनिवेशोंका परिचय थोड़े शब्दोंमें नहीं दिया जा सकता भारतीय इतिहासका यह भी एक विस्तृत अध्याय है उस अतीतका जितना ही अनुशीलन

किया जायगा उतने ही नवीन नवीन तत्वोंका उद्घाटन होगा और उसका रहस्यमय इतिहास सभी विद्वानोंको विस्मित करेगा। ईसाकी पांचवीं सदीमें श्याम देशने भी भारतीय धर्म्म और संस्कृतिकी दीक्षा ग्रहण की। कम्बोजसे बौद्ध धर्म्म श्याम आया और कम्बोजकी तरह ही हीनयान सम्प्रदायको श्याम में आश्रय मिला। चम्पाके ध्वंसावशेषमें ताम्रनिर्मित एक सुन्दर सिंहली बौद्ध मूर्ति मिली है। फरासिसि विद्वान कावातों कहते हैं कि ईसाकी तेरहवीं सदी तक चम्पा और कम्बोज तथा सोलहवीं सदी तक पोर्चुगीज आगमन पर्य्यन्त श्यामदेश अपना जातीय जीवन भारतीय साधना और सभ्यताके प्रभावसे जीवित रख सका।

इस देशने सर्वप्रथम संस्कृति भारतीय ब्राह्मणों द्वारा और पीछे मालावार और कुरुमण्डलके व्यापारियों द्वारा प्राप्त की थी। कम्बोजके साथ साथ लाओस और श्याम भी भारतीय सभ्यतासे तबतक अनुप्राणित बना रहा जब कि इन्डोचीनके पूर्वीय तटने चीन सभ्यता स्वीकार की। अब भी भारतीय सभ्यताके अनेक प्राचीन ध्वंसावशेष श्याम और उसकी प्राचीन राजधानी सवंखलोक, सुखोकय और लोपबरी में पाये जाते हैं। श्यामका भूत और वर्त्तमान धर्म्म (ब्राह्मण और बौद्धधर्म्म) इसकी पवित्र भाषा, नागरिक संस्थायें, इसकी लेखन कला, शिल्प और साहित्य सभी कुछ भारतवर्षसे आया था। तेरहवीं सदीमें थाईलिपि६५

उस समय प्रचलित लिपिके आदर्शपर ब्राह्मण आचार्यों ने प्रचलित की थी। यह सारी संस्कृति आज पर्य्यन्त स्थानीय धर्म्माचार्य्यों द्वारा सुरक्षित है और वही धर्म्माचार्य्य आज पर्य्यन्त शिक्षकोंका काम कर रहे हैं।

—:—

भारतवर्षसे प्रशान्त महासागर।

खमेर और मालय पोलिनिशिया जगतका सम्बन्ध भारतके साथ बहुत प्राचीन कालसे चला आया है—ऐसा अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। सम्भव है यह सम्बन्ध भारतमें आर्य्यों और द्रविड़ोंके आगमनके पूर्वसे ही हो। परन्तु यदि यह कल्पना छोड़ भी दी जाय तो भी ऐतिहासिक युगके प्रारम्भ होते ही भारत महासमुद्रका एक प्रान्त मालयद्वीप पुञ्जके साथ और दूसरा प्रान्त मैडागास्कर और अफ्रिकाके अन्यान्य द्वीपपुञ्जोंके साथ वाणिज्य सम्बन्धके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण है। महासमुद्रके इस सुविस्तीर्ण वाणिज्य मार्गमें विश्रामस्थान सिंहल समझा जाता था। यह बात निस्सांदिग्ध प्रमाणित हो चुकी है कि भारतीय नाविक व्यापारियोंने व्यापारके लिये समुद्र मार्गसे निकलकर इन द्वीपपुञ्जोंका सर्वप्रथम अनुसन्धान किया था। इसके सैकड़ों वर्ष पीछे फाह-यीन और गुण वर्म्मन इसी प्राचीन वाणिज्य मार्गको अवलम्बन कर सिंहल और यवद्वीप (जावा) पहुंचे थे। मालय उपद्वीप भारतसे पूर्व एशिया जानेके मार्गमें

वणिक और विदेशयात्रियोंका मिलन केन्द्र था। सुमात्राकी जनता मालय उपद्वीपसे भारतीय सभ्यता द्वारा अनुप्राणित होकर अपनी असभ्यता छोड़ सकी थी और पीछे भारतीय सभ्यता और धर्म्मको पूर्ण रूपसे ग्रहण कर सकी थी। उनके पुराण--वर्णित देवियां सभी हिन्दू देव देवियां थीं। हिन्दुओंके सृष्टिवादको भी इन्होंने अपना लिया था। केवल कुछ कला कौशल और सजानेके शिल्पमें उनकी स्वतन्त्रता दिखाई देती थी। एशियाके शिल्प इतिहासमें यवद्वीप (जावा) और कम्बोजका गृहनिर्माण शिल्प और मण्डन शिल्प सदा ही अपना विशिष्ट स्थान रखेगा।

सुमात्राका श्रीविजय साम्राज्य

ई० स० ६७१ और दूसरी वार ई० स० ६६८ में चीन बौद्ध परिव्राजक इचिंग भारतीय धर्म्मग्रन्थका पठन और अनुवाद करनेके लिए उस समय श्रीविजय राज्य नामसे परिचित सुमात्रा द्वीपमें आये थे। एक हजार बौद्ध भिक्षु आचार्य्य सुमात्राके विद्याविहारोंमें रहकर बौद्धधर्म्म और शास्त्रका अनुशीलन किया करते थे और ह्युवेन्तसाङ्गके सुमात्रा गमनके पहले ही नालन्द विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध महास्थविर धर्म्मपाल भारतीय शिक्षा और संस्कृतिके अनुशीलनका नियन्त्रण करने सुमात्रा भेजे गए थे। इचिंगके समयसे तेरह सौपचास ईसवी पर्य्यन्त सुमात्राका इतिहास विषयक सम्बन्ध बहुत ही कम जाना जा सकता है। चौदहवीं सदीके अन्तमें सम्राट आदित्यवर्म्मनके समय

सुमात्रामें अवलोकितेश्वरका तांत्रिक अवतार जिन अमोघपाशकी मूर्त्ति निर्माण हो रही हैं और पदङ्गचन्डीका मन्दिर बन रहा है यह स्पष्ट दिखाई देता है। इस मन्दिरका शिलालेख अत्यन्त अशुद्ध संस्कृत भाषामें लिखा हुआ है। इसी समय उत्तर सुमात्रा मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया और हिन्दू-सभ्यता और संस्कृति धीरे धीरे विनाशकी ओर अग्रसर होने लगी।

जावा (यवद्वीप) मदुरा, बाली, लोम्बक और बोर्नियोमें हिन्दू संस्कृति

बहुत प्राचीन कालसे ही भारतीय साहित्यमें जवद्वीप (जावा) का उल्लेख पाया जाता है। रामायणमें जावा (यवद्वीप) और सुमात्रा द्वीपका उल्लेख सुवर्णद्वीपके नामसे मिलता है क्योंकि उन दिनों यह दोनों ही द्वीप सोनेकी खानके लिये प्रसिद्ध थे। बोर्नियो द्वीपमे भी शैव और वैष्णव मूर्तियां पाई गई हैं। राजा मूलवर्म्मन९६ की यूप शिलालिपिसे प्रमाणित होता है कि वैदिक यज्ञ यागादि बोर्नियोमें हुआ करते थे। सुमात्राकी तरह जावामें भी मूलसर्व्वास्तिवादियोंका एक विराट प्रतिष्ठान था और उनके धर्म्मग्रन्थोंकी भाषा संस्कृत थी तथा जावाका शिल्प और साहित्य भारतवर्षका अन्ध अनुकरण किया करता था, इसलिये कम्बोजकी तरह जावामें ऐसी कोई विशेषता नहीं थी कि जिसे उसकी निजस्व कहा जाय। महायान

बौद्ध धर्म्म आठवीं सदीमें जावामें प्रतिष्ठित हुआ था। इसीलिये ई० स० ७७८ में श्री विजय साम्राज्यके सैलेन्द्र वंशके एक सम्राटने अवलोकितेश्वरकी शक्ति आर्य्या ताराकी एक मूर्ति और मन्दिरकी प्रतिष्ठा की जिसके ध्वंसावशेषका नाम अब चण्डी कलसनके नामसे प्रसिद्ध है। इसी मन्दिरमें एक संस्कृतके शिलालेखमें उक्त मूर्ति और मन्दिर प्रतिष्ठाका विवरण है और विशेषता यह है कि उक्त शिलालेखकी लिपि उत्तर भारतकी है, कवी अथवा प्राचीन जावाकी नहीं। विद्वद्वर डा० कर्णका मत है कि यह तांत्रिक महायान धर्म्म पश्चिम बंगालसे आया था। नवीं सदीमें जिन बौद्ध मन्दिरोंका निर्माण हुआ था वे समस्त हो महायान धर्म्म प्रतिष्ठानके अंश है पर इसके बादके समस्त शिल्पोंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि की मूर्तियां दिखाई देती है और उससे यह कहा जा सकता है कि उस समय हिन्दू-धर्म्मका प्राधान्य हो चुका था। इससे यह पता चलता है कि जिस समय चम्पा, जावा और विशेषकर बालीद्वीपकी जनता जब हिन्दू धर्म्मके भिन्न२ सिद्धान्तोंको ग्रहण कर रही थी, उस समय उन द्वीपोंके राजवंश बौद्ध धर्म्म ग्रहण कर रहे थे। मध्य युग तक राज्यधर्म्म बौद्धधर्म्म और जनताके हिन्दू-धर्म्ममें परस्पर सहिष्णुता और मैत्रीके पवित्र भाव दिखाई देते थे और सहिष्णुताके कारण एक विचित्र एकीकरण धार्म्मिक विचारोंमें और शिल्पमें दिखाई देता ह।

नवीं सदीमें भारतवर्षसे जिस सभ्यता और संस्कृतिका

श्रोत पूर्व्वा सागरकी ओर प्रवाहित हो रहा था उसका प्रारम्भ दक्षिण भारतसे हुआ था। इस सभ्यता और संस्कृतिका केन्द्र सुमात्राका श्रीविजय राज्य था और इसका प्रभाव जावा (जवद्वीप) और दक्षिण भारतके एक अंशपर भी पड़ा था। इसका उल्लेख नालन्दमें नवाविष्कृत महाराज देवपालके शिलालेखमें पाया जाता है। भारतवर्षके भाव, धर्म्म, शिल्प और सौन्दर्य्यके आदर्शसे ओत प्रोत शैलेन्द्र शासित जावा (जवद्वीप) ने बोरोबुदर९७ के मन्दिरका निर्माण किया। इस नवीं सदीसे आरम्भ कर चौदहवीं सदी तक भारतका धर्म्म ही जावाके निज धर्म्म रूपसे प्रतिष्ठित हुआ था।

बौद्धधर्म्म उस समयके जावाद्वीपके शासक महाराज श्रीईशानविजय धर्म्मोत्तुङ्गदेव (ई०९५०स०) से त्रिभुवनोत्तुङ्गा देवी (जो समस्त जावा पर राज्य कर रहीं थीं १३५०) का राज्य-धर्म्म था।

इन्डोचीन और इन्डोनिशियाका आध्यात्मिक मैत्रीबन्धन।

पहले हीसे बौद्धधर्म्मके साथ साथ ब्राह्मणधर्म्म और विशेषतया शैवसम्प्रदायका प्राधान्य जावा, मदुरा, बाली और लोम्बक की जनतामें देखनेमें आता है। इसीलिये दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं सदीमें जब इन्डोनेशियन शिल्प चरम सीमा पर पहुंच चुका था उसी समय जावामें प्रम्बानम् ९८ और पानातरम् ९९ नामक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्तिके विराट प्रख्यात हिन्दू मन्दिरोंका निर्माण और उन मन्दिरोंकी प्राचीर पर रामायण और

जावाके बोरो बुदर मंदिर से। पृ: ७४

कृष्णायण (महाभारत)की विचित्र घटनाये' चित्रित देखनेमें आती हैं। कम्बोजके सुप्रसिद्ध अंकुरथोम१०० का शैव मन्दिर (नवीं सदी) बापुयनका वैष्णव देवमन्दिर और कम्बोजराज परम विष्णुलोक की पृष्टपोषकता में निर्मित महाभारत पुराणादिके प्रस्तर चित्रोंसे परिशोभित अंकुरभट्ट१०१का विशाल विष्णुमन्दिर इसी युगमें प्रतिष्ठित हुआ था (इ० स०११५०)। विद्वद्वरका बातों (Cabaton) का कथन है कि "यह समस्त मन्दिर इस भावके निदर्शन है कि जिस साधना और विकाशका भाव इसमें दिखाई देता है वह चिन्ताविमुख ख्मेर जातिका निजस्व नहीं है, यह केवल हिन्दू जातिकी बुद्धि प्रतिभा द्वारा ही सम्भव है और यह हिन्दुओंके उपनिवेशका प्रभाव है कि जो उस समय आठवींसे चौदहवीं सदी तक उन देशों पर (चम्पा और कम्बोज) शासन कर रहे थे। जो हो बारहवीं और तेरहवीं सदीमें ऐनम और स्याम जातिके आक्रमणसे हिन्दुओंकी इस सभ्यता और संस्कृतिका प्रभाव क्रमशः प्रभाहीन होने लगा और इनके कुछही दिन बाद इस्लामके प्रबल वेगने हिन्दुओंके इन उपनिवेशोंमेंसे हिन्दू प्रभाव नष्ट कर दिया।

मालय पोलिनिशिया द्वीपपुञ्ज

भारतने अपना धार्म्मिक प्रभाव चीन और जापान पर प्रेम और मैत्री द्वारा स्थापन किया था, परन्तु दक्षिण पूर्वएशियामें भारतीय प्रभाव विस्तरित करनेमें, बीच बीचमें राष्ट्रनीति और युद्धकी भी सहायता लेनी पड़ी थी तोभी केवल सैन्य सञ्चालन,

विजय और राज्य शासनकी एक मात्र इच्छा भारतवासियोंके किसी भी स्थानमें दिखाई नहीं दी। यही कारण है कि विजय और युद्धके भीषण दृश्यको उन देशोंकी जनता थोड़े ही दिनोंमें भूल गई। उन्हें स्मरण रही—केवल भारतवर्षकी अपूर्व्व सभ्यता और भावसृष्टि। इसीलिये दक्षिण पूर्व्व एशियाकी प्राचीन भाषामें जो संस्कृतका शब्द विनिमय पाया जाता है वह समस्त ही धर्म्मनीति, शिल्प और ज्ञान विषयक है। विद्वद्वर डा० स्कीटने इसे अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है। विद्वान क्रूईजितने लिखा है कि "मालय पलिनिशिया भाषामें भगवानके जितने नाम पाये जाते हैं वे समस्त ही संस्कृत देवता शब्दके पर्य्यायवाचक हैं; स्याउमें देवताको 'दूअता', मैकसरों और ब्यूजिनियोंमें 'देवता', बोर्नियोके दायकोंमें 'जबता या जता' फिलिपाइन दीपपुञ्जके लोगोंमें--'दिवता','दवता द्युअता' कहते हैं' इसी प्रकार संस्कृत शब्द भट्टार कुछ परिवर्त्तित रूपमें कई इन्डोनिशयन भाषाओंमें ईश्वरके लिये पाया जाता है, जैसे वटार गुरू जो 'सरीपद' और 'मनलबुलन' के साथ मलाया दीपपुञ्जके तीन सर्वप्रधान देवताओंमें पाया जाता है, जैसा कि डा० कर्ण का मत है।

किन्तु हालहीमें पोलिनिशियन गाथा और पुराणोंमें जो भारतीय प्रभावके प्रमाण आविष्कृत हुए है वह बहुतही आश्चर्य्यजनक हैं। मि० कीनने लिखा है कि—

"मालय पोलिनिशियाके कवियोंकी पवित्र आत्मा मानों

कभी कभी, एक अद्वितीय महापुरुषकी खोजमें असीम आकाशमें भ्रमण किया करती है। हिन्दुओंका जो साश्वत ब्रह्महै, वही पोलिनिशियनोंका "तांगारोआ" है अर्थात जो है, जो था और जो चिरदिन रहेगा। जिस समय भूमण्डलमें आकाश, जल, जगत और मनुष्य कोई नहीं था उस समय विराट निबिड़ शून्यतामें भी उस हिन्दुओंके ब्रह्म और पोलिनिशियनोंके "तांगारोआका अस्तित्व था। वेदोंमें उसी असीमके अनुसन्धानमें मानों प्रशांत महासागर दीपसे दीपान्तर शब्दायमान हो रहा है। इसीलिये प्रश्न उठता है कि "क्या वैदिक भारतके साथ इनका कभी सम्बन्ध था? इसका उत्तर पूर्णतया तबतक नही दिया जा सकता जबतक इन्डोनेशियन और मैलेशिया जातिके पूर्व्व प्रयासका समय निर्धारित नहीं होता। प्रश्न यह है कि इन जातियोंका आविर्भाव हिन्दू धर्म्मप्रचारकोंके उक्त स्थानोंमें पहुंचनेके पहले अथवा पीछे हुआ था।

सेवा और मैत्री—बृहत्तर भारतका मूलमन्त्र

प्रशान्त महासमुद्रकी तरंगोंमें पोलिनिशियन वेदोंकी यह सुगम्भीर मन्त्रवाणी मानों भारतके इस विश्वविहारकी मर्म्म कथा धीरे धीरे प्रवेश कर रही है। जान पड़ता है कि बृहत्तर भारतके इस विश्वानुभूतिके :मन्त्र चारों ओर प्रतिध्वनित होरहे हैं। यद्यपि भारतवर्षके किसी किसी सम्राटने युद्ध संघर्ष और संग्रामको ही राजधर्म्म मान लिया था तो भी समग्र भारतने

शान्ति और कल्याणको ही मुक्तिका एक मात्र पथ स्वीकार किया था। जिन २ देशों और जातियोंके साथ भारतवर्षका सम्बन्ध हुआ था—भारतने उन सभीकी राजनैतिक स्वतन्त्रताका सन्मान किया और अपने पास जो कुछ सर्व्वश्रेष्ठ था वही दूसरे देशोंको देकर उनकी कल्याणवृत्तिको उद्‌बुद्ध किया था। संसारके इतिहासमें भारतवर्षका यह एक अमूल्य गौरव है कि जो कुछ सत्य सुन्दर था उसीके साथ भारतका भाग्य संलग्न दिखाई देता था। भारतीय इतिहासके सूक्ष्म चञ्चल श्रोतोंके बीच बीचमें दिग्विजयी, अत्याचारी सम्राट और धूर्त्त वाणिज्य धुरन्धरोंका आविर्भाव दिखाई देता है तो भी वे भारतीय जीवन श्रोतको सदा कर्दममय न रख सके। इसीलिए कितने ही विजेता और राजचक्रवर्तियोंके नाम विस्मृतिके अन्धकार मय गर्भमें छिप जाने पर भी भारतके बाहर वृहत्तर भारतका विचित्र जनसमाज मनुष्य मात्रके कल्याणके लिये और विश्वमैत्रीकी प्रतिष्ठाके लिये उन आचार्य्यों और धर्म्म भिक्षुओंकी मानव प्रेम रूप, निस्स्वार्थ सेवा और मैत्रीको आज पर्य्यान्त नहीं भूल सका है। असीम कृतज्ञता और अपरिमेय यत्नसे अन्यान्य देश आज भी भारतकी उस दिव्य स्मृतिको अपने हृदयस्थलमें जीवित रख सके हैं।

परिशिष्ट

अतीश—(८७)

विक्रमशिला मठ (मगध) के भिक्षु जो तिब्बतसे निमंत्रित होकर वहाँ-पर बौद्धधर्म्म प्रचार करने ई० सं० १०३८ में नयपालके राज्यकालमें गए थे। तिब्बतकी सारी जागृतिका श्रेय इन्हींको है। ये वज्रयोगिनी (पूर्व्व बंग) के रहनेवाले एक ब्राह्मण थे। ये बड़े सुधारक थे और बौद्धधर्म्ममें दीक्षित होनेपर इनका नाम दीपङ्कर श्रीज्ञान हो गया था।

अमोघवज्र—(८२)

आठवीं सदी ए० डो०में इन्होंने मंत्रयान सम्प्रदायका अंकुरारोपण किया था और यह तांत्रिक मतके प्रधान उपदेशक थे।

अराकेशिया—(४६)

वर्त्तमान कन्धार

अश्वघोष—(५५)

पहली सदी ए० डी० कनिष्कके समकालीन। इन्होंने संस्कृतमें सबसे पहले बुद्धचरित्र लिखकर ख्याति प्राप्त की। ये बड़े विद्वान, दार्शनिक और संगीतज्ञ थे।

असङ्ग—(७४)

पेशावर अथवा उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्तके रहनेवाले थे। आप एक विशेष दार्शनिक महायान सम्प्रदायके सूत्रालंकारके रचयिता और आपके कई सैद्धान्तिक ग्रन्थोंका चीनी और जापानी भाषामें अनुवाद हुआ है।

अङ्कुरथोम—(१००)

यह एक प्रसिद्ध शैव मन्दिरका नाम है। आठवीं सदीमें कम्बोजके हिन्दू उपनिवेशमें राजा यशोवर्म्मनके राजत्वकालमें निर्मित हुआ था।

अङ्कुरभाट—(१०१)

यह काम्बोजके एक प्रसिद्ध वैष्णव मन्दिरका नाम है। ग्यारहवीं सदीमें

सम्राट परम विष्णुलोकके राजत्वकालमें दिवाकर नामक एक ब्राह्मण स्थपित की देख रेखमें बना था ।

ईजियन—(१३)

यूनानके ऐतिहासिक युगके पहलेकी सभ्यताका नाम जिसका पता सबसे पहले डा० श्लीमानने माइकिनीमें १८७६ में लगाया था ।

उद्यान—(५८)

पेशावरके उत्तर स्वात नदीके ऊपरके प्रदेशका नाम । इसकी राजधानीका नाम मंगल था ।

ऊषभदात—(५१)

शक राजा इनको महाराष्ट्रके क्षत्रपनहापन्नाकी पुत्री दक्षमित्रा व्याही थी । ये नासिकके महा सेनापति (गवर्नर) थे और ऋषभदत्त भी कहलाते थे । इन्होंने पीछे हिन्दूधर्म्मकी दीक्षा ली और उसके बड़े संरक्षक बन गये । इनका समय पहली सदी ए० डी० है ।

ऊईगुर—(६३)

सेन्ट्रल एशियाकी एक तुर्की जाति जिसने बौद्धधर्म्मकी दीक्षा ली थी ।

एकियन—(१२)

प्राचीन यूनानके चार जाति-विभागोंमेंसे एक मुख्य जाति-विभाग होमरके महाकाव्यमें एकियन जाति यूनानकी सबसे श्रेष्ट जाति थी ।

एथेन्स—(३२)

ग्रीस (यूनान) की राजधानी ।

एपिरस—(४२)

ग्रीस (यूनान) का एक प्रदेश ।

एरिया—(४५)

हेरात प्रदेश ।

एसकाइलस—(२६)

(५२५-४४६) बी० सी० एथेन्सका एक विख्यात नाट्यकार इनके नाटक प्राचीन ग्रीष भाषामें पाये जाते हैं और वे यूनानके गौरव-स्वरूप समझे जाते हैं।

कनफ्यूसियस

चीनके कनफ्यूसियसनिज्मके प्रवर्त्तक बड़े दार्शनिक और व्यक्तिगत नैतिक आचरणोंको सर्व्व श्रेष्ठ मानने वाले। योगके यम, नियम आदि सिद्धान्तोंको स्वीकार करते हुए ईश्वरवादको अस्वीकारकर बौद्ध और जैन धम्मके मनुष्य मात्रको ईश्वरत्व प्राप्त करनेकी शक्तिके सिद्धान्तको स्वीकार किया है।

कपिलवस्तु—(२१)

भगवान बुद्धदेवका जन्म स्थान। मि० पो० सी० मुखर्जीके मतानुसार वर्त्तमान तिलौरा जो तौलिवके दो मील उत्तर (नैपालको तराई राज्यका मुख्य स्थान निगलिवासे ३॥ मील दक्षिण पूर्व्व)। मि० भिनसन्ट स्मिथके मतानु सार पिपरावा (बस्तीके उत्तर)

काइरस—(३५)

ये ईरान साम्राज्यके जन्मदाता और काइ रस दी ग्रेटके नामसे प्रसिद्ध हैं राज्यासनपर ५५८ बी० सी० में बैठे और हेरोडोटसके मतसे इन्होंने २६ वर्ष राज्य किया।

काइरीन—(४१)

उत्तर अफ्रिकामें यूनानका एक प्रधान प्राचीन उपनिवेश।

कार्थेज—(३६)

अफ्रिकाके उत्तर भागका एक सबसे प्रसिद्ध और पुराना नगर। फिनि-शियनोंने ई० सी० ८२२ बी० सी० में बसाया था। पहले-पहल रोमनोंने ई० स० १४० बी० सी० में नष्ट किया और फिर रोमनोंने ही उसे बसाया, पर अन्तमें अरबलोगोंने ई० स० ६९८ ए० डी० में नष्टकर दिया।

कानजूर और तानजूर—(८८)

तिब्बती भाषामें बौद्ध त्रिपीटक, भगवान बुद्धके उपदेश और सू:ां:। संग्रह, जिसमें आयुर्वेद, इन्द्रजाल आदिका भी संग्रह है।

कालचक्रयान बज्रयान—(६०)

तिब्बत और हिमालयके पार्व्वत्य प्रदेशमें प्रचलित महायान बौद्धधम्मं का संशोधित रुप।

काशगर—(५६)

चीन तुर्किस्तानका एक प्रधान शहर। इस शहरसे होकर आक्सस (वत्तु नदी) की घाटीसे खोखण्ड, समरकन्द और खोटानको रास्ते जाते हैं। भारत और चोनके मार्गमें होनेके कारण यह शहर प्राचोन कालसे राजनैतिक और व्यापारिक केन्द्र रहा है।

काराशहर—(७२)

तुर्किस्तानके एक प्रदेशका नाम।

कैपिडोशिया—(६)

एशिया माइनरके एक सुविस्तीर्ण टापूका नाम।

कृष्ण विदेशी—(७८)

पाँचवीं सदोमें एक भारतीय बौद्ध भिक्षु कोरिया गए थे। कोरिया वालोंको उनका नाम न मालुम होनेसे कृष्ण विदेशी कहलाये इनकी प्रसिद्धी हिन्दू आयुर्वेद विद्यामें हुई।

कोबो—(८३)

इनका पूरानाम कोबो डायशो है और यह एक बड़े जापानी सुधारक, राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने नवीं सदीमें जापानमें बुद्धधर्म्मको अपनाया।

खरोस्ट्री—(३६)

एक प्राचोन लिपि जिसमें उत्तर पश्चिम भारतके बहुतसे शिलालेख

मिले है। यह लिपि अनार्य्य समझी जाती है। क्योंकि यह फारसीको तरह दहनेसे लिखी जाती है।

खोटान—(६०)

पुर्व्वीय तुर्किस्तानका एक शहर। यह शहर भी बड़ा प्राचीन है और संस्कृतमें इसका नाम कुष्टान पाया जाता है।

चन्द्रगोमिन—(८६)

चान्द्र व्याकरणके कर्त्ता और जिनको संस्कृत व्याकरणका तिब्बती भाषामें आठवीं सदीमें अनुवाद हुआ था।

चन्द्रगर्भ सूत्र—(६७) और सूर्य्यगर्भ सूत्र—(६८)

भारतवर्षके बाद मध्य एशियामें अशुद्ध संस्कृतमें लिखा हुआ महायान धर्म्मग्रन्थ जिसमें कर्म्मकाण्ड और इन्द्रजाल भी सम्मिलित था जिसको तुर्की मंगोल और तिब्बतीलोग बहुत पसन्द करते थे।

चाउवंश—(२२)

ग्यारहवींसे तीसरी सदी बी० सी० तक चीनमें राज्य करनेवाले एक वंशका नाम। चीनमें सभ्यताके मध्ययुगमें यह वंश बहुत शक्ति शाली समझा जाता था परन्तु इसकी प्रधान शक्ति राजन्य तन्त्रमें ही थी।

जूडिया—(५२)

वर्त्तमान पैलिस्टाइन, यहूदियोंका निवास स्थान और यहाँपर दो धर्म्मोंका आविर्भाव हुआ था एक जडाइज्म (प्राचीन यहुदी धर्म्म) और दूसरा वर्त्तमान ईसाई धर्म्म।

जूकिआओ—(२५)

चीनी यांगी कनफ्यूसियस प्रतिपादित धर्म्मसिद्धान्त।

जड्रोसिया—(४६)

वर्त्तमान मकरान देशका नाम यह भारतकी सीमाके बाहर था, इसको यूनानियोंने चन्द्रगुप्त मौर्य्यसे सन्धि करनेके समय दिया था।

जोरस्टर—(२६)

पारसी धर्म्मके संस्थापक। ईरानी भाषामें जरथुष्ट्र कहते हैं।

टसिटस—(३)

रोमका एक सबसे बड़ा इतिहास लेखक। इनका स्थान विद्वानोंमें बहुत ऊंचा है और इनका समय ई० स० ५५-१२० ए० डी। ये प्रायः १० सम्राटोंका राज्य-काल देख चुके थे।

ट्रोजन युद्ध—(१६)

संसार प्रसिद्ध युद्ध जो ट्रोजन (एशिया माइनर स्थित ट्रोय देशके रहने वाले) और यूनानियोंके बीच करीब १२०० बी० सी० में हुआ था और जिसको होमर (यूनानके व्यास) ने अपने महाकाव्य "इलियड" में अमर कर दिया है।

डोरियन—(१७)

यूनानकी एक प्रधान जातिके लोग

डीलौस—(३०)

ईजियन समुद्रका एक टापू। यहां एक यूनानी राष्ट्रोंके परिषद्की स्थापना हुई थी जिसका यूनानके इतिहासपर बहुत प्रभाव पड़ा।

ताङ्गवंश—(७६)

चीनका एक दूसरा प्रसिद्ध राजवंश जो कि भारतके गुप्तवंशका समकालीन (६१७-६१०) और गुप्तवंशीय राजाओंकी तरह शिल्प और साहित्यका प्रधान परिपोषक था। इन्हींके समय ह्यूवेन्त सङ्ग, इचिङ्ग आदि भारत भ्रमणको आये थे।

ताओकि आओ—(२५)

चीनो ऋषि लावटसे प्रतिपादित धम्म । इस धम्म पुस्तकका नाम ताओतेकि' है जो हिन्दुओंके उपनिषदसे मिलती जुलती है ।

तुवेङ्गहुवाङ्ग—(७७)

मध्य-एशियाकी मरुभूमिमेंसे निकला हुआ गिरि-मंदिर । फ्रांस और हंगेरीके पुरा तत्त्ववेत्ता मेससपाल पेलियो और सर आरल स्टीनने बहुतसी मूल्यवान हस्तलिखित पुस्तकें तथा दीवालोंपर अंकित बहुतसे सुन्दर चित्रों का पता लगाया है । ये गुफायें कई शताब्दि तक तीर्थस्थान समझी जाया करती थीं । पुरा तत्त्ववेत्ताओंका कहना है कि भारतवर्षकी अजन्ता और एलोराके सदृश यह भी है ।

तुङ्गुस— (६२)

मध्यएशियाकी एक तुर्की जाति जिसने बौद्धधर्मको अपनाया था ।

तृरत्न—(७६)

बौद्धधम्ममें हिन्दू तृमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिवके स्थानपर बुद्ध धम्म और सङ्घ ।

थटमोसिस तृतीय—(११)

मिश्रका एक प्रधान महाराजा जिसने पश्चिमीय एशियाके अंशको जीता था (१५५७-१५०१ बी॰ सी॰) ।

थेरवाद—(५७)

पाली भाषामें 'थेर' संस्कृतमें 'स्थविर' का अपभ्रंश है स्थविरवाद ही नयान सम्प्रदायके भिक्षुओंका दार्शनिक साहित्य । इस मतके अनुसार मनुष्यको पहले स्थविर होकर कठिन व्रतोंका पालनकर वैयक्तिक निर्वाण प्राप्त करना होता है । परन्तु महायानके अनुसार बुद्धदेवके अवलोकितेश्वरके अवतार रूपमें, जबतक कोई भी मनुष्य संसारमें बाकी रह जायगा तबतक उसके

निर्वाणके लिये भगवान बुद्ध बार बार जन्म लिया करेंगे। यह गीताके "धम्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे का प्रतिबिम्ब है।

थ्युकिडिडिस—(२)

एथेन्सका एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक (समय ४७१ बी० सी०)। इनका पेलोपनिशियन युद्ध का इतिहास बहुत प्रसिद्ध है।

थाईलिपि—(६५)

भारतीय गुरुओं द्वारा श्याममें तेरहवीं सदीमें भारतीय वर्णमालापर अवलम्बित एक लिपि।

धर्म्मरत्न—(६३) और

काश्यप मातङ्ग—(६२)

ई० स० ६७में चीन सम्राट मिंगटीने एक भिक्षु संघको बौद्धधर्म्म प्रचारार्थ आमंत्रित किया था उसके दो प्रधान व्यक्तियोंका नाम।

धम्मपद—(७०)

ये भगवान बुद्धके वाक्य समझे जाते हैं और यह बौद्ध लोगोंकी भगवद्गीता है। आदि ग्रन्थ पालिमें मिला था, पर अब मध्यएशियामें एक संस्कृत प्रति भी मिली है।

नक्शीरुस्तम—(२८)

प्राचीन ईरानकी एक शिला जो वहांके प्राचीन राजाओंका समाधि-स्थान कहा जाता है। दरायुने अपने अन्तिम शब्द इसपर अंकित कराये थे।

नारायुग—(८०)

ई० स० ७०८-७६४ ए० डी० तकके समयका नाम। जापानमें बौद्धधम्म का चरमोत्कर्ष। जापान बौद्ध सम्राट नारा नामकस्थानमें (क्योटोसे कुछ मिल दूर) अपनी राजसभा किया करते थे, जहाँ बड़े बड़े बौद्ध मन्दिर और मूर्त्तियां अब भी जापान शिल्पके गौरवमय प्रारम्भके निदर्शन रूपसे वतम्मान हैं।

नागार्जुन—(६५)

इनका समय प्रथम शताब्दि। महायान बौद्ध धर्म्मके प्रवर्त्तक प्रज्ञापारमिता सूत्रके रचयिता और सम्भवतः इन्होंने भारतीय रसायन विद्याका प्रचार किया था।

नासत्य—(६)

दो (यमज) वैदिक देवता अश्विनी कुमारोंका नाम और जिनको महाभारतके नकुल और सहदेवके पिता भी कहते हैं।

नोसस—(१४)

क्रीट दीप स्थित ईजियन जातिकी राजधानी।

पद्मसंभव—(८६)

ये एक भारतीय विद्वान. और इन्होंने अपने शिष्य पागुर वैरोचन सहित कई पुस्तकोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद किया था।

पाइमा— (६४)

चीनमें पहला बौद्ध मन्दिर जो होनान प्रदेशमें स्थापित हुआ था यह स्थान चीनी बौद्धधर्म्मका केन्द्र और यहींपर बहुतसे धर्म्मग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद हुआ था और यह पाइमा-सू नामसे प्रसिद्ध है।

पानातरम—(६६)

पूर्व्वीय जावाका एक वैष्णव मन्दिर जो तेरहवीं सदीमें बना था और उसमें भी रामायण और कृष्णायणके(महाभारत) प्रस्तर चित्र पाये जाते है।

पिन्दोलभरद्वाज— (८५)

यह एक भरद्वाज गोत्रिय ब्राह्मण जो जापान गए थे और उन्होंने इतनी प्रसिद्धि लाभ की थी कि आज पर्यन्त भी जापानी उनका नाम स्मरण और उनका चित्र दिखाते हैं।

पैरोपनिसदाई—(४४)

वर्त्तमान काबुल प्रदेश जो पहले यूनानियोंके अधिकारमें था और

पेलोपनिशियन युद्ध—(३१)

यूनानका महाभारत संग्राम। इसका समय ई० स० ४३१-४०४ बी० सी० इसमें यूनानके सभी राष्ट्र एक एथेन्सकी अध्यक्षता और दूसरे स्पार्टाकी अध्यक्षतामें आपसमें लड़े थे और इसके बाद ही यूनानका पतन हो गया।

पेरिप्लस आफ दी इरीथ्रियन सी—(६६)

एक अपरिचित यूनानी नाविककी दैनिक घटनाओंका संग्रह जिसमें एलेक जन्ड्रियासे लालसमुद्र (रेडसी) अरबसागर (अरेबियन सी) और भारतीय महासागर (इण्डियन ओशन) होकर मलायाद्वीपपुंजसे चीन तक (जो उस समय हैन वंशक अधीन था समय ई० स ६४)के मार्गका सिंहावलोकन है। इसमें भारतवर्षके दो हजारवर्ष पूर्व जल मार्ग द्वारा व्यवसाय और वाणिज्यका महत्त्वपूर्ण वर्णन पाया जाता है।

पोलिबियस—(४)

यूनानी इतिहासज्ञ समय २०४-१२२ बी० सी०।

पोलिनिशिया—(६४)

मध्य और पश्चिमीय प्रशान्त महासागरके द्वीपपुंजका नाम है। इसके मुख्य द्वीप फिनिक्स, समोआ आदि हैं।

प्यूनिकयुद्ध—(४०)

यह युद्ध रोम और उत्तर अफ्रिकाके तट स्थित कार्थेज शहरमें हुआ था। यह युद्ध तीन बार (१) ई० स० २६४-२४१ बी० सी०, (२) ई० स०-२१८-२०१ बी० सी० (३) इ० स० १४९-१४६ बी० सी० में हुआ था और अन्तमें कार्थेज शहरको रोमनोंने तहस नहस कर दिया।

प्रम्बानम—(६८)

मध्य जावाका एक हिन्दू (सनातनी) मन्दिर जो वहांके प्रसिद्ध बौद्ध-

मन्दिर बर बुदरके एक शताब्दिके बाद बना था। इस मन्दिरमें रामायणके प्रस्तर चित्र पाये जाते हैं। रामायण भारतवर्षसे जावा नवीं सदीके पूर्व गई थी और उसका भाषान्तर प्राचीन जावाकी कावी भाषा (संस्कृत और जावा मिश्रित) में हुआ था।

प्लेटिया—(३७)

यूनानके एक स्थानका नाम जहांपर १२ अगस्त ई० स० ४७६ बी० सी०में युद्ध हुआ था।

फिनिशियन—(१०)

सेमिटिक जाति विशेषके लोग।

फाग्सपा—(६१)

एक अलौकिक भारतीय ब्राह्मण पण्डित जिनका नाम शाक्य पण्डित था। अठारहें वर्षकी अवस्थामें बौद्ध धर्म्मानुयायी मुगलराज कुब्लेखांने तेरहवीं सदीमें काराकोरम पर्व्वतपर होनेवाले धर्म्म परिषद्में आमन्त्रित किया था, जहां जाकर इन्होंने समस्त अन्य धर्म्मावलम्बी विद्वानोंको पराजित कर बौद्धधर्म्मकी सर्व्व श्रेष्ठता सिद्ध की थी।

बसुबन्धु—(७५)

एक बड़े बौद्ध दार्शनिक, समुद्रगुप्तके समकालीन (चौथी सदी)

बिहिस्तून—(२७)

प्राचीन ईरानकी एक शिलाका नाम, जिस शिलापर महाराज दरायु (Darius, 510B.C,) ने एशियाटिक राजाओंपर विजयकर उनके बन्दित रूप तथा अपने विजयकी सूचीको उत्कीर्ण कराया था।

बेसनगर—(४८)

ग्वालियर राज्य स्थित भिलसाके पासका एक ग्राम जो बेतवा नदीके पूर्व किनारेपर है। यहांपर एक गरुड़स्तम्भ निकला है जिसमें यवनराज (Ionian) हेलियोडोरस तक्षशिला निवासी दीयके पुत्रके भागवतधर्म्म ग्रहण

करनेका विवरण है। ये तक्षशिलाके महाराज अन्तलिकित (Amtalikit) के दूत होकर राजा काशिपुत्र भागभद्र त्रातारके यहां (जिनके शासनका चौदहवां वर्ष था) आये थ। उक्त धर्म्म में दिक्षित हो उन्होंने वहांपर एक गरुड़स्तम्भ निर्माण कराया, जिसका समय १५० बी० सी० माना जाता है।

बोगाजक्यूई—(५)

मेसोपटेमियाके बोगाज़क्यूई नामक एक स्थानमें एक शिलालेख आविष्कृत हुआ है जिसमें अपर यूफ्रेटिसपर शासन करने वाली मिटानो नामक एक प्राचीन जाति और उनके प्रतिद्वन्दी हिटाइट लोगोंके बीच सन्धि हुई है और उस सन्धिके समय उन लोगोंने वैदिक देवताओंको साक्षी माना है। इस शिला लेखका समय १५०० बी० सी० है।

बोरोबुदर—(६७)

शैलेन्द्रवंशज (सुमात्रा सम्राट जिन्होंने जावा विजय किया था) द्वारा आठवीं सदीमें निर्मित जावाका सबसे बड़ा बौद्ध मन्दिर जिसमें ललित-विस्तर (संस्कृतमें बुद्धचरित्र) के अनुसार बुद्धदेवकी जोवन घटनाके प्रस्तर चित्र भी अङ्कित हैं।

महामयूरी—(६६)

तिब्बती भाषामें अनुबादित महायान सम्प्रदायका एक ग्रन्थ जिसमें इन्द्रजाल सम्बन्धी वातोंके साथ साथ भौगोलिक विषयोंको भो चर्चा है।

मण्डल न्याय—(१६)

कौटिल्य अर्थशास्त्रके आधारपर निर्मित राजनैतिक सिद्धान्त। इस सिद्धान्तकी भित्ति भिन्न भिन्न सैनिक और राजनैतिक समूहोंके अनुमान पर अवलम्बित है और जिसका उल्लेख मण्डलक नामसे किया गया है और इनके पारस्परिक कूट नीति पूर्ण सम्बन्धको मण्डल न्याय कहते हैं:

मारडोनियस—(३८)

एक प्रसिद्ध ईरानी सेनापति जिन्होंने भारतीय सिन्धकी सेना लेकर

यूनानपर आक्रमण किया था। उस समय (४७६ बी० सी०) सिन्ध प्रदेश एक ईरानी राजाके अधीन था जिसे दरायसने ५१० बी० सी० में विजय किया था।

मिलिन्दपन्हो—(४६)

एक बहुत उपयोगी पाली ग्रन्थ जिसका प्रारम्भ सैद्धान्तिक चर्चासे होता है। यवन (Ionian) राज्य मिनैन्दरसे, जिसने भारतके दोआब प्रान्तको विजय किया था। नागसेन नामक एक बौद्धभिक्षुका साक्षात्कार हुआ था और उन्होंने मिनैन्दरको दार्शनिक विषयोंकी चर्चामें पराजित कर बौद्धधर्म्ममें दीक्षित कर मिलिन्द नामसे प्रचलित किया।

मिटानी—(८)

अपर युफ्रेटिसपर राज्य करनेवाली एक जाति जिसने हिटाईटसे सन्धि करते समय वैदिक देवताओंको साक्षी माना था।

मिनोअन—(१५)

ईजियन जातिके राजवंशका नाम जिसके प्रवर्त्तक माइनोस थे।

मेमफिस—(५६)

प्राचीन मिसर देशके एक मन्दिरोंसे भरा हुआ नगर।

राजामूलवर्म्मन—(६६)

बोर्नियोके एक हिन्दू राजा जिन्होंने वैदिक यज्ञ किया था और उसका विवरण एक यूपपर भारतीय लिपि और संस्कृत भाषामें उत्कीर्ण कराया है; जिसका समय चतुर्थ शताब्दि है।

रुद्रदामन—(५०)

बर्बर शक राजा जिन्होंने हिन्दू धर्म्मके शैव मतकी दीक्षा ली थी। दे: भि० स्मिथ और रुद्रदामनका जुनागढ़वाला संस्कृत शिलालेख—ए० इ० भाग० ८ पृष्ठ-३६-४६)

लावट्से—(३३)

प्रसिद्ध चीनी ताओ-किओ धम्म (दर्शन) के जन्मदाता जिसका अर्थ सतपथ है और जिसे वर्त्तमान प्रचलित भाषामें ताओइजम कहते हैं। इस धम्म का सूत्र-ग्रन्थ ताओतेकिङ्ग कहा जाता है जो हिन्दू उपनिषदोंसे बहुत कुछ मिलता है।

शिन्तोधर्म्म—(८४)

जापानमें बौद्धधम्मके प्रादुर्भावके पहलेका धम्म, जिसमें पूर्वजोंकी पूजा प्रधान थी। बौद्धधम्मके प्रभावसे यह मत बहुत कुछ दब गया, परन्तु मेजी वंशके उत्कर्षके साथ इस धम्मने प्रधानता प्राप्तकी क्योंकि यह राजधर्म बन गया।

शुभकरसिंह—(८१)

अमोघवज्रके समकालीन जिन्होंने चीनमें मंत्रमतका प्रचार आठवीं सदीमें किया था।

षाड्गुन्य—(२०)

संधि, विग्रह, आसन, यान, संग्रह और द्वैधीभावको षाड्गुण्य कहते हैं विशेष विवरण कौटिल्य अर्थशास्त्रमें देखो।

सद्धर्म्म पुण्डरीक—(७३)

बौद्ध धर्म्मके महायान सम्प्रदायका एक प्रधान ग्रन्थ जो चीनी और जापानियोंके बाइबलके रूपसे समझा जाता था।

सिनशिह हुआङ्गती—(६१)

चीनका एक प्रधान सम्राट, धर्म्माशोकके समकालीन चाउ वंशके बाद शिनवंशके स्थापन कर्त्ता। चीनकी प्रसिद्ध दीवार इन्होंने ही चीनकी सभ्यताको रक्षा असभ्य हियङ्गनू जातिसे करनेके लिये बनवाई थी।

सेमिटिक—(३४)

संसारकी तीन जाति विभागमेंसे एक विभाग अरब और फिनिशियन लोग इसी जातिके थे।

सेल्युकसनिकेटर—(४३)

चन्द्रगुप्त मौर्य्यके समकालीन सीरियाके राजा, एन्टीगोनसके प्रतिद्वन्दी और इन्होंने अपनी लड़की महाराज चन्द्रगुप्तको व्याह दी थी।

स्काइलक्स—(३७)

एक ईरानी सेनापति जिसने गान्धार प्रदेशमें पंजाब नदीसे एक जल सेना भेजनेका प्रयत्न किया था।

स्पार्टा—(३३)

दक्षिण यूनानका एक प्रधान शहर। इस देशमें प्राचीन यूनानके बड़े वीर, देशभक्त लियोनिडासके समान जिनकी कीर्ति विश्वव्यापिनी हो गई है, पैदा हुए थे।

हीनयान—देखो थेरवाद

हिरोडोटस—(१)

इतिहासके जन्मदाता ई० स० ४८४-४२५ बी० सी०

हिटाइट—(७)

एक प्राचीन जाति जो एशिया माइनरके सीरिया प्रदेशके आस पास रहती थी। इस जातिका विशेष विवरण बाइबिलमें और ११००-७० बी० सी० के असीरियन इतिहासमें मिलता है।

होमर—(१८)

यूनानके सुविख्यात कवि (वाल्मीकि) इनका समय संभवतः ई० स० ८५० बी० सी० के पहले लोग मानते हैं। यूनानके महाकाव्यके रचयिता।

❀ इति ❀

शुद्धि पत्र।

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
नदा	नदी	१	१
दव	दैव	१४	२
कवियों	ऋषियों	२२	२
कवियोंने	ऋषियोंने	२	३
आर	और	१९	३
कवियोंका	ऋषियोंका	२१	३
हिन्द	हिन्दू	१	४
मानंव	मानव	६	४
शृखंलाबद्ध	शृंखलाबद्ध	९	४
का	को	१०	४
सम्भवत	सम्भवतः	१८	५
जातियांसे	जातियोंसे	२	७
दाप	दीप	१७	९
उपायोसे	उपायोंसे	१३	१०
हा	ही	९	१३
था	थी	१२	१३
हंसा	हिंसा	१६	१३
मत्य	मृत्यु	२०	१३

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
औ	और	७	१४
का	की	१५	१४
कों	को	१५	१४
और	ओर	१९	१४
निभय	निर्भय	१३	१५
ओर	और	५	१६
ओर	और	८	१६
ओर	और	१०	१६
अहिन्सा	अहिंसा	१०	१६
इिन	दिन	१६	१६
पजा	पूजा	१८	१६
ल्पावित	प्लावित	१९	१६
लावोटसे	लावटसे	२	२०
कनफ्यसियस	कनफ्यूसियस	२	२०
पञ्चनदा	पञ्चनदी	९	२०
यनान	यूनान	११	२१
नदा	नदी	६	२२
जावन	जीवन	११	२२
यनान	यूनान	२२	२२
का	को	२१	२३
सुमद्धिशाली	समृद्धिशाली	२१	२८

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
को	का	२०	२९
ओर	और	२१	२९
ओर	और	६	३०
ओर	और	७	३०
ओर	और	११	३०
सेल्यूकसनिर्केटर	सेल्यूकसनिकेटर	२१	३१
राजदत	राजदूत	६	३२
प्रेरित	प्रेषित	१०	३२
दाक्षित	दीक्षित	२१	३३
शिल्प	शिल्पी	२१	३३
गया है	गए हैं	२२	३३
अ र	और	१४	३४
दा	दी	१८	३६
का	को	१७	३७
किनार	किनारे	१४	४०
आर	और	१६	४१
प्रदक्षिण	प्रदक्षिणा	८	४७
बन्दा	बन्दी	३	५१
ध्याग	ध्यान	२२	५१
दा	दी	३	५२
दाप	दीप	११	५२

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
सहस्त्रों	सहस्रों	१५	५२
भिन्नु	भिक्षु	१७	५२
भिन्नुनियों	भिक्षुनियों	१९	५२
दापपुञ्ज	दीपपुञ्ज	१४	५३
जहा	जहां	१६	५३
वहीं	वही	८	५५
अपव्र्व	अपूर्व्व	२१	५५
सदा	सदी	१९	५६
राजनोतक	राजनैतिक	२१	५८
शैथिब्य	शैथिल्य	१६	५९
दसरो	दूसरी	२०	६१
अेर	और	४	६२
का	को	५	६२
पाण्डित	पण्डित	११	६२
दीपंकार	दीपंकर	१६	६२
मर्तिनिर्माण	मूर्तिनिर्माण	२२	६३
दाचित	दीचित	१	६४
तुङ्गस	तुंगुस	४	६४
सदा	सदी	१७	६४
सदा	सदी	२१	६४
सदा	सदी	१०	६६

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
धम	धर्म्म	१७	६६
गोरवमय	गौरवमय	१	६७
इसी	इस	१०	६८
दात्ता	दीत्ता	४	६९
उपदाप	उपदीप	२२	७०
उनके	उनकी	४	७१
सदा	सदी	१	७३
जावादाप	जावादीप	११	७४
सदामें	सदीमें	१९	७४
सदामें	सदीमें	१३	७५
शून्यतामें	शून्यमें	५	७७
दसरे	दूसरे	५	७८
ग्रोष्य (२९)!	ग्रीस	२	८१
परले (३९)	पहले	२	८१
अनाय्य (३६)	अनार्य्य	२	८३
जडाइज्म (५२)	जुडाइज्म	२	८३
इसषर (२८)	इसपर	२	८६
आर (९)	और	१	८७
जिमको (९)	जिनको	१	८७
दैदिक (६६)	दैनिक	१	८८
होनेवाले (९१)	होनेवाली	३	८९

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
महायांन (६९)	महायान	१	९०
यनान (३८)	यूनान	१	९१
संसारकी (३४)	संसारके	१	९३

प्रकाशक :

विनायक लाल खन्ना,

हिन्दू पुस्तकालय,

१२, शिवठाकुर गली,

कलकत्ता ।